प्रेक्षाध्यान
दर्शन और प्रयोग

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक :
आदर्श साहित्य विभाग
जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं–341306
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (01581) 226080, 224671
ई–मेल : books@jvbharati.org

Books are available online at
https://books.jvbharati.org

ISBN No. :

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : मई 2018

मूल्य : साठ रुपये मात्र

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

प्रस्तुति

संसार में अनेक योग साधना पद्धतियां प्रचलित हैं। उनमें एक है प्रेक्षाध्यान। इस पद्धति का प्रादुर्भाव परम पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी की सन्निधि में परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा किया गया। पिछले लगभग चार दशकों में इस पद्धति ने देश-विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस विषय में साहित्य भी प्रकाशित हुआ है और यत्र-तत्र शिविर भी लग रहे हैं। परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी इसके पुरोधा रहे। इस पद्धति की एक प्रामाणिक और आधारभूत पुस्तक की अपेक्षा महसूस की गई। विभिन्न प्रशिक्षक प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करवाते हैं, उन सबमें एकरूपता रह सके—यह वांछनीय है। उसके लिए एक आदर्श पुस्तक की आवश्यकता होती है। परमपूज्य आचार्यश्री का चिन्तन था—एक ऐसी पुस्तक प्रतिष्ठित हो, जिसका सभी प्रशिक्षक अनुगमन करें। इस सारे संदर्भ में 'प्रेक्षाध्यान : दर्शन और प्रयोग' पुस्तक प्रस्तुत हो रही है।

इस पुस्तक के निर्माण में परमपूज्यश्री ने अपने जीवन के अंतिम दिन तक श्रम किया। मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी आचार्यश्री की सन्निधि में बैठती और पूज्यश्री के वचनों का श्रुतलेखन करती। परमपूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के महाप्रयाण के बाद मैंने इस पुस्तक का पारायण किया और मेरे निर्देशन में इसका पुनः सम्पादन किया गया। यह पुस्तक प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने और व्यवस्थित प्रयोग-पद्धति को प्रस्तुत करने में सफल हो सकेगी। शुभाशंसा।

आचार्य महाश्रमण

पुरोवाक्

श्रीडूंगरगढ़ (राजस्थान) में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मर्यादा महोत्सव के संदर्भ में दीर्घकालीन प्रवास। मर्यादा महोत्सव सन् २०१० की सानंद संपन्नता। ७ फरवरी २०१०, फाल्गुन कृष्णा एकम वि.सं. २०६६ का दिन। प्रायः दैनिक क्रम के अनुसार प्रातराश के बाद मैं पूज्यवर के सान्निध्य में उपस्थित थी। पूज्यवर ने अनायास अतिरिक्त करुणा बरसाते हुए बिना किसी पूर्व भूमिका के फरमाया—'आज तुम्हें एक नयी पुस्तक लिखाना शुरू करना है।'

उत्सुक व प्रश्नायित नयनों के साथ मैंने पूछा—'किस विषय पर?'

आचार्यवर ने फरमाया—'प्रेक्षाध्यान के दार्शनिक दृष्टिकोण पर। अब तक प्रेक्षाध्यान की अनेक पुस्तकें आ चुकी हैं, किंतु अभी प्रेक्षा-दर्शन का स्पष्ट स्वरूप नहीं लिखा गया है। मैं प्रेक्षाध्यान के दार्शनिक चिंतन को लिखाना चाहता हूं। इसके साथ ही 'प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति' को भी व्यवस्थित कराना है।'

इसके कारण की ओर इंगित करते हुए पूज्यप्रवर ने फरमाया—'प्रेक्षाध्यान के शिविरों में प्रारंभ में मैं स्वयं ध्यान के प्रयोग कराता था। इन वर्षों में वह क्रम अवरुद्ध हो गया। आजकल मुनि किशनलालजी और मुनि महेन्द्रकुमारजी ध्यान कराते हैं। अन्य स्थानों पर आयोजित होने वाले प्रेक्षाध्यान शिविर कई प्रशिक्षकों द्वारा संचालित हो रहे हैं। प्रयोग कराने वालों ने अपने-अपने तरीके से प्रयोग कराना शुरू कर दिया है। इसलिए एक बार संपूर्ण प्रयोगों की समीक्षा कर उन्हें व्यवस्थित करना अपेक्षित है।'

मैंने पूछा—'आचार्यवर! पुस्तक लेखन-कार्य कब शुरू कराएंगे?'

तत्काल आचार्यवर ने फरमाया—'आज ही और अभी।'

अहोभाव से आपूरित हो तत्काल मैं लिखने के लिए तत्पर हो गई।

आचार्यवर ने दो क्षण के लिए निमीलित नयनों से ध्यान किया और सबसे पहले पुस्तक का नामकरण कर दिया—'प्रेक्षाध्यान : दर्शन और प्रयोग।' फिर बिना किसी औपचारिकता के लिखाने का क्रम प्रारंभ हो गया। आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता मुझे इस बात की थी कि प्रायः अकर्ता भाव में रहने वाले आचार्यप्रवर ने स्वयं की ओर से लिखाने का निर्देश दिया। संभव है किसी के द्वारा कोई निवेदन या आवश्यकता प्रस्तुत की गई हो और लिखाने के लिए अनुग्रह मुझ पर कराया। अन्यथा प्रायः कुछ नया लिखने के लिए मैं ही समय-समय पर पूज्यवर के चरणों में अनुरोध करती। मेरी भावना का सम्मान रखते हुए पूज्यवर ने अपनी अनेक कृतियों के लेखन में मुझे सहभागी बनाया।

जो भी हो, इस पुस्तक के संदर्भ में कुछ नया-नया सा मुझे हरदम लगा। मैंने अनुभव किया—आचार्यवर के मन में इस पुस्तक को लिखाने की तत्परता थी। प्रातराश के पश्चात् का समय तो इसके लिए निर्धारित था ही, मध्याह्न में भी अन्यान्य कार्य को गौण कर प्रस्तुत पुस्तक के लेखन को प्राथमिकता देते थे। इस कार्य की गति-प्रगति के साथ ९ मई २०१० का दिन आ गया।

परमपूज्य आचार्यप्रवर ने प्रातराश ग्रहण करने के बाद फरमाया—'आज रविवार है। आगम कार्य का अवकाश है। तुम्हारे लेखन का कार्य पहले करवा दें।' उन दिनों पूज्य गुरुदेव 'प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति' पुस्तक का पुनर्निरीक्षण कर रहे थे। प्रयोगों में अनेक स्थानों पर यथोचित परिवर्तन का निर्देश देते हुए फरमाया—लेश्याध्यान का प्रयोग पुस्तक में व्यवस्थित नहीं है। तुम नया लिखो। एक पूरा प्रयोग लिखा दिया। आगे कहा—इसी क्रम से अवशिष्ट प्रयोग तुम स्वतः लिख लेना। स्वीकारोक्ति सूचक 'तहत्' कहते हुए मैं वंदना कर उठने लगी। न जाने क्यों? फिर मुझे रोकते हुए गुरुदेव ने फरमाया—'प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति' का प्रायः पुनर्निरीक्षण कर लिया है।

लगभग तुम्हें पूरी पुस्तक लिखा दी है। सिर्फ अनुप्रेक्षा का अध्याय अवशिष्ट रहा है। इस वार्ता का विराम सदा-सदा के लिए पूर्णविराम जैसा होगा—ऐसा तो कभी सपने में भी नहीं सोचा था, पर नियति को यही मान्य था।

महायोगी महाप्रज्ञ ज्ञान के अगाध समंदर थे। उनसे यत्किंचित् मोतियों को बटोरने का मुझे अवसर मिला। इसे मैं अपने पूर्वजन्म के सुकृत का ही फल मानती हूं।

मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभा

अनुक्रम

● प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक आधार	**११-५७**
१. प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक दृष्टिकोण	१३
२. प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य : चित्तशुद्धि	१६
३. प्रेक्षाध्यान का अर्थ	१८
४. प्रेक्षाध्यान का आधार	२०
५. प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा	२३
६. प्रेक्षा-चर्या के सूत्र	२४
७. अर्हम्	२८
८. आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें	३०
९. कायोत्सर्ग	३२
१०. अन्तर्यात्रा	३४
११. श्वासप्रेक्षा	३६
१२. शरीरप्रेक्षा	४०
१३. चैतन्यकेन्द्रप्रेक्षा	४५
१४. लेश्याध्यान	४८
१५. मंत्र-ध्यान	५१
१६. अनुप्रेक्षा	५३
१७. प्रेक्षाध्यान का परिकर	५५
● प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति	**५९-८५**
१. प्रेक्षाध्यान	६१
२. अनुप्रेक्षाएं	७४
३. सम्पूर्ण कायोत्सर्ग	८१

● **परिशिष्ट** **८६-९१**
मंगल-भावना ८४
आनन्द-भावना ८५
प्रेक्षा-संगान ८७
प्रेक्षाध्यान गीत ८८
भोजनकालीन भावना ८९
अणुव्रत आचारसंहिता ९०

प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक आधार

प्रेक्षाध्यान : दार्शनिक दृष्टिकोण

द्वंद्वात्मक अस्तित्व

हमारा अस्तित्व दो तत्वों का संयोग है–

१. आत्मा (चेतना)

२. शरीर (पुद्गल)

अनात्मवादी दार्शनिक केवल शरीर को वास्तविक मानते हैं।वे आत्मा की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं करते।

आत्मवादी दार्शनिक आत्मा और शरीर को भिन्न मानते हैं। वे आत्मा की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करते हैं। आत्मवादी दृष्टिकोण को समझने के लिए स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर तक की यात्रा करना आवश्यक है।

शरीरवादी दृष्टिकोण की सीमा है–स्थूल शरीर, इन्द्रिय और मन।

आत्मवादी दृष्टिकोण का विषय क्षेत्र व्यापक है–मन से आगे चित्त और भाव। इनके द्वारा शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति का संचालन होता है।

भाव का निर्माण लेश्या के द्वारा होता है। सूक्ष्म शरीर (तैजस शरीर) से आने वाले प्रकंपन या रश्मिचक्र ही लेश्या है। उसके आगे कर्मशरीर (सूक्ष्मतम शरीर) है और उसके आगे है आत्मा। आत्मा और सूक्ष्म शरीर का संबंध कषाय-वलय और अध्यवसाय से होता है।

आत्मा की प्रवृत्ति के द्वारा कर्म-परमाणुओं का आकर्षण होता है। वे कर्म-परमाणु कर्मशरीर की रचना करते हैं। वह सूक्ष्मतम होता है। वह

आत्मा की अभिव्यक्ति में बाधक बनता है। उसका एक तंत्र आत्मा के ज्ञान को आवृत करता है, उसे अभिव्यक्त नहीं होने देता, फिर भी उसका कुछ भाग अनावृत रहता है।

उसका दूसरा तंत्र आत्मा की शक्ति को स्खलित करता है। उसका तीसरा तंत्र कषाय के वलय का निर्माण करता है। उससे विकृति पैदा होती है।

बादल सूर्य को ढक देते हैं फिर भी दिन और रात का विभाग स्पष्ट रहता है।

कर्मशरीर का आत्मा पर आवरण बनता है फिर भी आत्मा और कर्मशरीर का स्पष्ट विभाग रहता है।

आत्मा से चैतन्य की रश्मियां कर्म शरीर के वलय का भेदन कर बाहर निकलती हैं किंतु उनकी प्रकाश-शक्ति बहुत कम होती है।

चैतन्य के स्पन्दन और कर्मशरीर के स्पन्दन निरंतर गतिशील रहते हैं। वे सूक्ष्म से स्थूल की ओर बढ़ते हैं। इस गतिक्रम में वे तैजस शरीर तक पहुंच जाते हैं। वहां तैजस शरीर के स्पन्दन उनके (चैतन्य और कर्मशरीर के) साथ मिलकर कर्मशरीर के स्पन्दनों को नाना रंगों से रंजित करते हैं। इस प्रक्रिया में चैतन्य और कर्मशरीर के स्पन्दन लेश्या के रूप में बदल जाते हैं।

चैतन्य के स्पन्दन, कर्मशरीर के स्पन्दन और तैजस शरीर के विद्युतीय स्पन्दन गतिवेग के साथ स्थूल शरीर में प्रवेश करते हैं। उनका मुख्य केन्द्र बनता है मस्तिष्क। नाड़ीतंत्र, संधि, स्रोत और मर्मस्थान उनके उपकेन्द्र बन जाते हैं। हठयोग की भाषा में इन्हें चक्र और प्रेक्षाध्यान की भाषा में इन्हें चैतन्यकेन्द्र कहा जाता है।

चैतन्य के स्पन्दन मस्तिष्क में चित्त का निर्माण करते हैं। चैतन्य के स्पन्दन, कर्मशरीर के स्पन्दन और तैजस शरीर के स्पन्दन मिलकर भाव का निर्माण करते हैं।

प्रवृत्ति के तीन स्रोत

प्रवृत्ति के तीन स्रोत हैं–शरीर, वाणी और मन। चित्त और भाव दोनों संयुक्त रूप से इनका संचालन करते हैं। चैतन्य शुद्ध होता है। भाव और लेश्या—ये शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। जब चित्त का शुभ भाव और शुभ लेश्या के साथ योग होता है तब शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति शुभ हो जाती है और जब चित्त का अशुभ भाव और अशुभ लेश्या के साथ योग होता है तब शरीर, वाणी और मन की प्रवृत्ति अशुभ बन जाती है।

भावतंत्र या लेश्यातंत्र हमारे संचित कर्म या संस्कारों का झरना है। कर्म के इस प्रवाह के बाहर आने का माध्यम है अन्तःस्रावी ग्रंथितंत्र (Endocrine System)। जब लेश्या से भावित अध्यवसाय आगे बढ़ते हैं, तब वे हमारे ग्रंथितंत्र को प्रभावित करते हैं। इन ग्रंथियों के स्राव संभवतः कर्मों का अनुभाग या विपाक हैं। ये हॉर्मोंस अन्तःस्रावी ग्रंथियों से स्रवित होने वाले रासायनिक द्रव्य हैं, जो रक्त के साथ मिलकर दैहिक एवं मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। उनसे हमारा चिंतन, वाणी, आचार और व्यवहार संचालित व नियंत्रित होते हैं। इस प्रकार ये ग्रंथितंत्र और स्थूल शरीर के मध्य परिवर्तक का कार्य करते हैं। वे चेतना के अतिसूक्ष्म आदेशों को भौतिक स्तर पर परिवर्तित कर स्थूल शरीर और मन तक पहुंचा देते हैं।

ग्रंथितंत्र के रसायन (Hormone) के निर्देशों को क्रियान्वित करने के लिए योगतंत्र (क्रियातंत्र) सक्रिय हो जाता है। उसके तीन अंग हैं– १. शरीर २. वाणी ३. मन। शरीर का काम है कायिक प्रवृत्ति। वाणी का काम है बोलना। मन का काम है–स्मृति, कल्पना और चिंतन करना।

मनुष्य की समस्त क्रियाएं अध्यवसाय, कर्मशरीर, तैजसशरीर, चित्त और भाव से संचालित होती हैं। इसलिए मनुष्य का अस्तित्व पूर्ण स्वतंत्र नहीं है।

प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य : चित्त-शुद्धि

ध्यान करने वाले को अपना लक्ष्य निश्चित करना चाहिए। प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य है चित्त-शुद्धि, शुद्ध चेतना का अनुभव।

'मैं चित्त-शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का अभ्यास कर रहा हूं'—इस संकल्प सूत्र के साथ ध्यान का प्रारंभ होता है। ध्यान का प्रयोग करने वाला श्वास का आलम्बन लेकर मन को एकाग्र करता है। जो साधक सब चिंतनों से मुक्त होकर केवल श्वास को देखता है, चित्त-शुद्धि के लक्ष्य के साथ देखता है, उस समय वह राग-द्वेष से मुक्त क्षण में होता है। इसलिए वह एकाग्र ध्यान चित्त-शुद्धि का साधन बन जाता है। श्वासप्रेक्षा आदि का अभ्यास करने वाले की एकाग्रता जैसे-जैसे बढ़ती है वैसे-वैसे उसकी ध्यान की चेतना भी बढती जाती है। अभ्यास परिपक्व होने पर वह आलम्बन को छोड़कर निरालम्बन ध्यान में चला जाता है, विचार और विकल्प समाप्त हो जाते हैं। निर्विचार और निर्विकल्प ध्यान की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

चित्त-शुद्धि होने पर मन, वचन और काया की प्रवृत्ति शुभ होती है। राग और द्वेष अथवा कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चित्त-अशुद्धि के मूल कारण हैं। चित्त-शुद्धि का क्षण राग-द्वेष मुक्त क्षण होता है, वीतरागता का क्षण होता है। वीतरागता के क्षण जितने प्रलम्ब होते हैं, उतनी ही सुख-दुःख में सम रहने की चेतना जागृत रहती है।[१]

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—क्षमा का विकास, सहिष्णुता

१. **उत्तरज्झयणाणि, २९.३७—कषायपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ? कषायपच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ। वीयरागभावपडिवन्ने वि य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ।।**

का विकास। प्रिय-अप्रिय, अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करने की शक्ति का विकास।

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—मृदुता का विकास, विनम्रता का विकास।

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—ऋजुता-सरलता का विकास।

वीतराग चेतना की अनुभूति का अर्थ है—संतोष का विकास, अनासक्ति का विकास, मूर्च्छा अथवा ममत्व के विसर्जन का विकास।

प्रेक्षाध्यान का अर्थ

'प्रेक्षा' शब्द 'ईक्ष' धातु से बना है। इसका अर्थ है देखना। प्र+ईक्षा=प्रेक्षा, इसका अर्थ है गहराई में उतरकर देखना। 'देखना' ध्यान का मूल तत्त्व है। इसलिए इस ध्यान पद्धति का नाम 'प्रेक्षाध्यान' रखा गया है।

देखना और जानना चेतना का लक्षण है। आवृत चेतना में देखने और जानने की क्षमता क्षीण हो जाती है। उस क्षमता को विकसित करने का सूत्र है—देखो और जानो।

चिंतन, विचार या पर्यालोचन करो— यह बहुत गौण और बहुत प्रारम्भिक है। यह साधना के क्षेत्र में बहुत आगे नहीं ले जाता।

हम देखते हैं, तब सोचते नही हैं और जब सोचते हैं, तब देखते नहीं हैं। विचारों का जो सिलसिला चलता है,उसे रोकने का महत्त्वपूर्ण साधन है देखना। कल्पना के चक्रव्यूह को तोड़ने का सबसे सशक्त उपाय है देखना। आप स्थिर होकर अनिमेष चक्षु से वस्तु को देखें, विचार समाप्त हो जाएंगे। आप स्थिर होकर अपने भीतर देखें, अपने विचारों को देखें या शरीर के प्रकम्पनों को देखें तो आप पाएंगे कि विचार समाप्त हो रहे हैं। भीतर की गहराइयों को देखते-देखते सूक्ष्म शरीर को देखने लगेंगे। जो भीतरी सत्य को देख लेता है, उसमें बाहरी सत्य को देखने की क्षमता अपने आप आ जाती है।

देखना वह है, जहां केवल चैतन्य सक्रिय होता है। जहां प्रियता और अप्रियता का भाव आ जाए,वहां देखना गौण हो जाता है।

हम पहले देखते हैं, फिर जानते हैं। हम जैसे-जैसे देखते जाते हैं वैसे-वैसे जानते चले जाते हैं।

मध्यस्थता या तटस्थता प्रेक्षा का ही दूसरा रूप है। जो देखता है, वह सम रहता है। वह प्रिय के प्रति राग रंजित नहीं होता और अप्रिय के प्रति द्वेषपूर्ण नहीं होता। वह प्रिय और अप्रिय दोनों की उपेक्षा करता है।

प्रेक्षाध्यान का आधार

जैन धर्म की साधना-पद्धति स्वतन्त्र है। आगम साहित्य में साधना-तत्त्वों के बीज मिलते हैं। प्राचीन आगमों में आयारो का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह जैन आगमों में सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। भगवान महावीर की मूल वाणी के मौलिक सूक्त उसमें उपलब्ध हैं। उसमें जैन धर्म की साधना-पद्धति का बहुत सूक्ष्म व मार्मिक प्रतिपादन है। वह प्रेक्षाध्यान का आधारभूत ग्रन्थ है।

सूयगडो, भगवई व ठाणं में भी प्रकीर्ण रूप से भावना, आसन, ध्यान आदि का निर्देश मिलता है। उत्तरज्झयणाणि के २८वें अध्ययन में मुक्ति-मार्ग का संक्षिप्त, किंतु व्यवस्थित प्रतिपादन है। उसके २९, ३० और ३२वें अध्ययन में भी साधना का पथ निर्दिष्ट है।

साधना की प्रक्रियाओं का विस्तार हमें निर्युक्ति साहित्य में मिलता है। उसका सांगोपांग वर्णन आवश्यक निर्यक्ति के कायोत्सर्ग-अध्ययन में प्राप्त होता है। इसके रचनाकार हैं द्वितीय भद्रबाहु स्वामी और इसका रचनाकाल विक्रम की चौथी-पांचवीं शताब्दी है। ध्यान का विशद विवेचन जिनभद्रगणी (छठी शताब्दी) के 'ध्यान शतक' में भी मिलता है। ये दोनों रचनाएं योगदर्शन तथा हठयोग के अन्य ग्रन्थों से प्रभावित नहीं हैं। इनमें जैन परम्परा का स्वतन्त्र चिंतन परिलक्षित होता है।

जैन आगमों के गंभीर अध्ययन से हर कोई अनुभव करेगा कि उनमें ध्यान की प्रचुर सामग्री है। ध्यान-परम्परा की विस्मृति और अभ्यास के अभाव में उसका मूल्यांकन नहीं हो पा रहा है। ध्यान साधना के लिए

'आयारो' (आचारांग का प्रथम श्रुतस्कन्ध) पर्याप्त है। उसमें प्रेक्षा के तत्त्व बहुत स्पष्टता से प्रतिपादित हुए हैं।

प्रेक्षाध्यान : आगमिक स्रोत

- **अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए।**

(उत्तरज्झयणाणि ६/२)

स्वयं सत्य खोजें, सबके साथ मैत्री करें।

- **संपिक्खई अप्पगमप्पएणं।** (दसवेआलियं चूलिया २/१२)

आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें।

- **असइं वोसट्ठचत्तदेहे....स भिक्खू।**

(दसवेआलियं १०/१३)

जो मुनि बार-बार देह का व्युत्सर्ग और त्याग करता है, वह भिक्षु है।

- **अभिक्खणं काउसग्गकारी।** (दसवेआलियं चूलिया २/७)

साधु बार-बार कायोत्सर्ग करने वाला हो।

- **पणया वीरा महावीहिं।** (आयारो १/३७)

वीर पुरुष महापथ के प्रति प्रणत होते हैं। महापथ का अर्थ कुण्डलिनी-प्राणधारा भी है।

- **एत्थोवरए तं झोसमाणे अयं संधी ति अदक्खु।**

(आयारो ५।२०)

जो आरम्भ से उपरत है, उसने अनारम्भ की साधना करते हुए—'यह संधि है ऐसा देखा है।' संधि शब्द का अर्थ है—अप्रमाद के अध्यवसाय को जोड़नेवाला शरीरवर्ती साधन, जिसे चैतन्यकेन्द्र या चक्र कहा जाता है।

- **तम्हा एयाण लेसाणं, अणुभागे वियाणिया।**
  अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओ अहिट्ठेज्जासि।।

(उत्तरज्झयणाणि ३४/६१)

इन लेश्याओं के अनुभागों को जानकर मुनि अप्रशस्त लेश्याओं का वर्जन करे और प्रशस्त लेश्याओं को स्वीकार करे।

● **धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा।**

(ठाणं ४/६८)

धर्म्यध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं हैं–एकत्व, अनित्य, अशरण एवं संसार।

(विस्तृत जानकारी के लिए देखें–प्रेक्षाध्यान आगम और आगमेतर स्रोत।)

प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा

प्रेक्षाध्यान के प्रारम्भ में उपसंपदा–दीक्षा स्वीकार की जाती है। यह समग्र जीवनदर्शन है। ध्यान और जीवन को कैसे एकरस किया जाए, कैसे समग्रता से जीवन जीया जाए, इसका पूरा दर्शन उपसंपदा में प्राप्त है ।

उपसंपदा के चार सूत्र हैं–

१. अब्भुट्ठिओमि आराहणाए–

मैं प्रेक्षाध्यान की साधना के लिए उपस्थित हुआ हूं।

२. मग्गं उवसंपज्जामि–

मैं अध्यात्म-साधना का मार्ग स्वीकार करता हूं।

३. सम्मत्तं उवसंपज्जामि–

मैं अन्तर्दर्शन की उपसंपदा स्वीकार करता हूं।

४. संजमं उवसंपज्जामि–

मैं आध्यात्मिक अनुभव की उपसंपदा स्वीकार करता हूं।

ये उपसंपदा के चार सूत्र ध्यान की मानसिक तैयारी के सूत्र हैं।

पहली उपसंपदा में व्यक्ति अपने संकल्प को दृढ़ करता है।

दूसरी उपसंपदा में वह अध्यात्म के मार्ग पर चलने का संकल्प करता है।

तीसरी उपसंपदा में वह अन्तर्दर्शन की अनुभूति कराने वाले मार्ग पर चलने का संकल्प करता है।

चौथी उपसंपदा में वह आध्यात्मिक अनुभव करने का संकल्प करता है,वह संयम के बिना नही होता। इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि संयम की साधना के द्वारा आध्यात्मिक अनुभव करने का संकल्प करता है।

उपसंपदा के इन चार सूत्रों की स्वीकृति प्रेक्षाध्यान साधना की दिशा में चरणन्यास है।

प्रेक्षा-चर्या के सूत्र

प्रेक्षा-चर्या के पांच सूत्र जीवन शैली से जुड़े हुए हैं। जीवन शैली से जुड़े इन सूत्रों की स्वीकृति प्रेक्षाध्यान साधना में उपयोगी है। वे पांच सूत्र इस प्रकार हैं–

१. भावक्रिया

जैन साधना पद्धति में दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं–द्रव्य और भाव। जो क्रिया अन्यमनस्कता से की जाती है, वह है द्रव्य क्रिया, जो क्रिया तन्मय होकर की जाती है, वह है भावक्रिया।

जिस काम में चेतना और क्रिया का अद्वैत होता है, उसका नाम है भावक्रिया। इसका अर्थ है कार्य के प्रति सर्वात्मना समर्पण। इसका तात्पर्य है वर्तमान में जीने का अभ्यास। स्मृति के क्षणों में जीना अतीत के क्षणों में जीना है। कल्पना के क्षणों में जीना भविष्य के क्षणों में जीना है। ध्यान करते समय स्मृति अथवा कल्पना आती है तो वह एकाग्रता को बाधित करती है। स्मृति आवश्यक हो उस समय स्मृति, कल्पना आवश्यक हो उस समय कल्पना और चिंतन आवश्यक हो उस समय चिंतन। ये तीनों अपनी अपनी आवश्यकता के क्षणों में आए, अनावश्यक न आए–यह वर्तमान में जीना है।

स्मृति आवश्यक है, पर अनावश्यक स्मृति एकाग्रता को बाधित करती है।

कल्पना भी आवश्यक है, पर अनावश्यक कल्पना एकाग्रता को बाधित करती है।

चिंतन आवश्यक है, पर अनावश्यक चिंतन एकाग्रता को बाधित करता है।

एकाग्र चित्त वाला व्यक्ति ही ध्यान कर सकता है। जो जागरूक होता है, वही एकाग्र होता है। ध्यान का स्वरूप है चैतन्य का जागरण।

२. प्रतिक्रिया-विरति

प्रतिक्रिया– यह चेतना की संवेगात्मक अवस्था है। क्रिया करते समय अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति आती है,उसके अनुरूप दैहिक, मानसिक और भावात्मक अथवा संवेगात्मक प्रतिक्रिया होती रहती है। भीतर के आवेग परिस्थिति के साथ समायोजन नहीं कर पाते, उस स्थिति में प्रतिक्रियाएं होती हैं और व्यक्ति का व्यवहार बदल जाता है। कुछ प्रतिक्रियाएं सरल होती हैं और कुछ जटिल। इनको समझने के लिए क्रोध की चार प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करना आवश्यक है[१]–

१. पानी पर खींची हुई रेखा। ३. मिट्टी पर खींची हुई रेखा।

२. बालू पर खींची हुई रेखा। ४. पत्थर पर खींची हुई रेखा।

पानी पर खींची हुई रेखा सरल प्रतिक्रिया है, वह रेखा तत्काल मिट जाती है।

बालू पर खींची हुई रेखा कुछ जटिल प्रतिक्रिया है, वह हवा के झोंके के साथ ही मिट जाती है।

मिट्टी पर खींची हुई रेखा जटिलतर प्रतिक्रिया है, वह दीर्घकाल तक अवस्थित रहती है।

पत्थर पर खींची हुई रेखा जटिलतम प्रतिक्रिया है, वह जीवन पर्यन्त रहती है।

प्रतिक्रिया-विरति का तात्पर्य है क्रोध आदि आंतरिक भावों की विशुद्धि का अभ्यास। इसके द्वारा प्रतिक्रिया का स्तर गिरता जाता है।

---

१. ठाणं ४.३५४–चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा–पव्वयराइसमाणे, पुढविराइसमाणे, वालुयराइसमाणे, उदगराइसमाणे।

३. मैत्री

विरोध विक्षेप पैदा करता है। विरोध या शत्रुभाव के विकल्प प्रसन्नता के लिए बाधक बनते हैं। जो प्रसन्न रहना नहीं जानता, वह स्वस्थ भी नहीं रह सकता। स्वस्थ और प्रसन्न जीवन जीने का सूत्र है मैत्री का विकास।

प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में मैत्री का अर्थ है—आत्मौपम्य की चेतना का विकास। मैत्री का तात्पर्य कलह, लड़ाई, झगड़ा न करना ही नहीं है, इसका तात्पर्य है—अपनी आत्मा की अनुभूति के साथ प्राणी मात्र की आत्मानुभूति का संयोजन करना।

४. मिताहार

ध्यान की साधना के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। अस्वस्थ व्यक्ति ध्यान के साधारण प्रयोग कर सकता है। विशिष्ट प्रयोग वही कर सकता है जिसका शरीर स्वस्थ होता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जरूरी है आहार का विवेक और आहार का संयम।

कब खाना चाहिए? यह आहार के समय का विवेक है।

क्या खाना चाहिए? यह पाचन शक्ति और शरीर पोषण का विवेक है।

कितना खाना चाहिए? यह भोजन की मात्रा का विवेक है।

कैसे खाना चाहिए? यह भोजन की विधि का विवेक है।

- भोजन करते समय एकाग्र होकर खाना चाहिए—एकाग्रमना भुञ्जीत।
- भोजन करते समय प्रसन्न मन होकर खाना चाहिए—प्रसन्नमना भुञ्जीत।

इनमें आहार का संयम अथवा आहार की मात्रा का विवेक सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आहार-संयम का मन और भाव की शुद्धि के साथ भी गहरा संबंध है।

५. मितभाषण

साधक के लिए आवश्यक है वाणी का विवेक। बोलना मनुष्य की विशेषता है। उसका अगला चरण है बोलने का विवेक। साधनाकाल में मौन का बहुत मूल्य है।

● न बोलना मौन है। कभी भी नहीं बोलना कठिन है। सामान्यतया मौन का प्रयोग सावधिक समय के लिए होता है।

● कम बोलना भी एक प्रकार का मौन है। कम बोलने का तात्पर्य है अनावश्यक न बोलना। ध्यान के अभ्यास काल में सावधिक मौन का अभ्यास किया जाता है और कम बोलने का भी अभ्यास किया जाता है।

प्रेक्षाचर्या के सूत्र सबके लिए ही उपयोगी है, किंतु ध्यान करने वाले के लिए यह अधिक उपयोगी है।

अर्हम्

प्रेक्षाध्यान केवल एकाग्रता का प्रयोग ही नहीं है, वह जीवन का समग्र दर्शन है। उसमें ध्वनि, मंत्र आदि के विशेष प्रयोग भी करवाए जाते हैं। 'अर्हम' इसका महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। यह शक्तिशाली मंत्र है।

शरीर में मूल शक्ति का स्रोत है—प्राणशक्ति। अर्हम् की ध्वनि से प्राणशक्ति सक्रिय होती है, हमारे भीतर विद्यमान सुषुप्त शक्तियां जागृत होती हैं, शक्ति संपन्नता एवं अर्हता का बोध होता है।

प्रत्येक व्यक्ति में अर्हताएं होती हैं, किन्तु उन अर्हताओं का सबको बोध नहीं होता है। हम स्वयं नहीं जानते कि हमारे में कितनी अर्हताएं हैं, कितनी क्षमताएं हैं, कितनी योग्यताएं हैं।

'अर्हम्' विद्यमान शक्तियों को वृद्धिंगत करने का मंत्र है। हम इस मंत्र के माध्यम से प्राणशक्ति का अनुभव करें कि हम कमजोर नहीं हैं, हम दीन-हीन नहीं हैं, हम शक्ति-संपन्न हैं और अपनी शक्ति का उपयोग प्रत्येक क्षेत्र में कर सकते हैं।

पहली बात है—अर्हता का बोध होना, अर्हता का अनुभव होना।

दूसरी बात है—अर्हता कहां है, उसे जानना। अर्हता को जगाना, उसे जानना।

'अर्हं' परम सत्ता का प्रतीक है। इसलिए 'अर्हं' बीज मंत्र कहलाता है।

'अर्हं' हमारा इष्ट है। यह अर्हत् का बीज मंत्र है। प्रत्येक मनुष्य में असीम क्षमताएं होती हैं। जिसमें अपनी क्षमताओं को प्रकट करने की

अर्हता जाग जाती है, जो दूसरों की अर्हता को जगाने में लग जाता है, वह अर्हत् होता है।

आनन्दकेन्द्र थाइमस ग्रंथि का प्रभाव क्षेत्र है। 'अर्हं' उसको जगाने वाला मंत्र है। यह इसका सूचक है कि हमारे भीतर पदार्थातीत आनन्द का स्रोत बह रहा है। हम आनन्दकेन्द्र में 'अर्हं' का ध्यान कर स्थायी आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। इस आनन्द के प्रकट होने पर मानसिक तनाव कभी नहीं होता।

अर्हं

१. हमारे अस्तित्व की स्मृति है।

२. हमारे इष्ट की स्मृति है।

३. हमारे सहज आनंद को जागृत करने वाला है।

४. मानसिक तनाव को दूर करने वाला है।

५. मनोकायिक रोगों से बचाने वाला है।

६. इसके ध्यान से विकल्प शांत हो जाते हैं।

७. दाएं-बाएं पार्श्व में विद्यमान चैतन्यकेन्द्र जागृत हो जाते हैं।

जिसके आदि में 'अकार' मध्य में 'रकार' और अन्त में बिंदु युक्त 'हकार' है, उस अर्हम् का तन्मयता के साथ ध्यान किया जाए।

मन की एकाग्रता के साथ इस मंत्र का ध्यान करनेवाला व्यक्ति आनंद से परिपूर्ण हो जाता है।

[१]अकारादि–हकारान्तं, रेफमध्यसबिन्दुकम्।
तदेव परमं तत्त्वं, यो जानाति स तत्त्ववित्।।
महातत्त्वमिदं योगी, यदैव ध्यायति स्थिरः।
तदैवानन्दसम्पद्भूः मुक्तिश्रीरुपतिष्ठते।।

---

१. योगशास्त्र ८.२३

आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें

संपिक्खई अप्पगमप्पएणं[१]— आत्मा के द्वारा आत्मा की संप्रेक्षा करो। मन के स्तर पर होने वाली अवस्थाओं को देखो। भाव के स्तर पर होने वाले आंतरिक परिवर्तन को देखो। स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखो।

'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो'— यह अध्यात्म चेतना के जागरण का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। इस सूत्र का अभ्यास हम शरीर से प्रारम्भ करते हैं। आत्मा शरीर में है। इसलिए स्थूल शरीर को देखे बिना आगे नहीं देखा जा सकता। श्वास शरीर का ही एक अंग है। हम श्वास से जीते हैं इसलिए सर्वप्रथम श्वास को देखें। हम शरीर में जीते हैं इसलिए शरीर को देखें। शरीर के भीतर होने वाले स्पन्दनों, प्रकम्पनों या घटनाओं को देखें। इन्हें देखते देखते मन पटु हो जाता है, सूक्ष्म हो जाता है, फिर अनेक सूक्ष्म स्पन्दन दिखने लग जाते हैं। वृत्तियां या संस्कार जब उभरने लगते हैं, तब उनके स्पन्दन स्पष्ट होने लग जाते हैं।

प्रेक्षाध्यान-पद्धति का ध्येय-सूत्र है—अपने द्वारा अपने आप को देखें। जब तक आत्मा पर कषायों के मल का आवरण छाया है,हम अपने को देखने में असमर्थ रहते हैं। अतः आवरण को हटाने के लिए चित्त की एकाग्रता एवं चित्त की निर्मलता अत्यन्त जरूरी है। चित्त की निर्मलता प्राप्त होने से ही हमें शांति, मन का संतुलन, समता एवं आनन्द का

---

१. दसवेआलियं, बिइयाचूलिया गा. १२

अनुभव होने लगेगा। हमारी साधना की निष्पत्ति है आनन्द की अनुभूति। हमारे चित्त में आनंद तेजोलेश्या से, शांति पद्मलेश्या से तथा निर्मलता, समता एवं वीतरागता शुक्ललेश्या से प्राप्त होती है।

आत्मा के अनंत पर्याय हैं । प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में दो पर्याय विशेष उल्लेखनीय हैं–

१. ज्ञान आत्मा २. कषाय आत्मा।

ज्ञान आत्मा शुद्ध चेतना है। कषाय आत्मा मोहग्रस्त चेतना है। शुद्ध चेतना के द्वारा मोहग्रस्त चेतना को देखना आत्मा से आत्मा को देखने का प्रयोग है। साधक जैसे-जैसे ज्ञान आत्मा के द्वारा कषाय आत्मा को देखता है वैसे वैसे कषाय आत्मा का शोधन होता है, उपशम का विकास होता है।

संपिक्खई अप्पगमप्पएणं–इस सूत्र के आधार पर आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का निर्देश दिया जाता है ।

---

१. **दसवेआलियं, बिइयाचूलिया गा. १२**

कायोत्सर्ग

ध्यान के लिए आवश्यक है कायोत्सर्ग का अभ्यास, शरीर को प्रशिक्षित करने को अभ्यास ।

कायोत्सर्ग की पांच भूमिकाएं हैं–

१. पहली भूमिका

इसके तीन अंग हैं–

(अ) शिथिलीकरण का सुझाव–शरीर की चंचलता एक साथ समाप्त नहीं होती। चंचलता की स्थिति में ध्यान नहीं होता। इसलिए यह सुझाव देना आवश्यक है कि शरीर शिथिल हो जाए।

(ब) शिथिलीकरण का अनुभव–शरीर शिथिल हो रहा है, यह अनुभव करना।

(स) शिथिलता का अनुभव–पूरा शरीर शिथिल हो गया है, यह अनुभव करना।

२. दूसरी भूमिका

इस भूमिका में स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति होती है। इसमें दो तत्त्वों का अनुभव किया जाता है–

१. प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव।

२. प्राण के प्रवाह का अनुभव।

३. तीसरी भूमिका

इस भूमिका में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर गति होती है। इसमें दो अनुभव किए जाते हैं–

१. लेश्या—भाव के प्रकम्पनों का अनुभव।

२. स्थूल शरीर से तैजस शरीर के भेद का अनुभव।

४. चौथी भूमिका

इस भूमिका में सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम की ओर गति होती है। इसमें कर्मशरीर के स्पन्दनों का अनुभव किया जाता है।

५. पांचवीं भूमिका

इस भूमिका में—

१. शरीर और आत्मा के भेद का अनुभव किया जाता है।

२. ममत्व का विसर्जन किया जाता है।

यह शरीर मेरा नहीं है, यह अनुभव किया जाता है।

३. शुद्ध चैतन्य का अनुभव किया जाता है।

शरीर की चंचलता की अवस्था में स्थूल का बोध और स्थूल की अनुभूति होती है। आत्मा सूक्ष्म तत्त्व है और उसके प्रकम्पन भी सूक्ष्म हैं। शरीर की स्थिरता और शिथिलता की अवस्था में ही उनका संबोध और अनुभव किया जा सकता है। आत्मा की अनुभूति के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है कायोत्सर्ग। इस अवस्था में शरीर भाषा (वचन) वर्गणा के पुद्गलों को भी ग्रहण नहीं करता तथा चिन्तन के निमित्तभूत मनोवर्गणा के पुद्गलों को भी ग्रहण नहीं करता। इस अवस्था में सहज मौन और निर्विचार ध्यान सध जाता है।

प्रेक्षाध्यान का आदि बिन्दु है कायोत्सर्ग और अंतिम बिन्दु है कायोत्सर्ग।

अन्तर्यात्रा

हमारे नाड़ी तंत्र के तीन भाग हैं—अनुकम्पी, परानुकम्पी व केन्द्रीय नाड़ी संस्थान। अनुकम्पी और परानुकम्पी—दोनों के मध्य है केन्द्रीय नाड़ी संस्थान नाम की एक नाड़ी। उस नाड़ी में चेतना के प्रवेश होने का नाम है— अन्तर्यात्रा।

जीवन चलाना है तो उसके लिए कार्य करना होता है और कार्य करने के लिए उसे बाहर की दुनिया में आना होता है। बाहर आने के दो मार्ग हैं—१. अनुकम्पी २. परानुकम्पी। हठयोग की भाषा में इन्हें इड़ा और पिंगला कहा जाता हैं। जब भीतर रहना होता है तब चेतना इन दोनों प्रवाहों को छोडकर केन्द्रीय नाड़ी संस्थान में चली जाती है, सुषुम्णा में चली जाती है। सुषम्णा में रहना अन्तर्यात्रा है और दाएं-बाएं रहना बहिर्यात्रा है।

मध्य नाड़ी का नाम है सुषुम्णा। चेतना का बाह्य जगत में प्रवेश इड़ा और पिंगला इन दो प्राण-प्रवाहों के माध्यम से होता है। उसका अन्तर्जगत में प्रवेश सुषुम्णा के माध्यम से होता है। निष्कर्ष की भाषा में कहा जा सकता है कि अध्यात्म में प्रवेश करने अथवा अंतर्मुखी बनने का माध्यम है सुषुम्णा का प्राण-प्रवाह।

चित्त जब बाह्य जगत की यात्रा करता है, तब चंचलता बढ़ती है। वह अन्तर्जगत की यात्रा करता है, तब उसकी एकाग्रता बढ जाती है, वह एक ध्येय में लीन हो जाता है।

सुषुम्णा सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करने का माध्यम है। यह रीढ़ के भीतर स्थित है। यह रीढ़ के निम्न भाग से प्रारंभ होकर ऊपर तक जाती है। रीढ़

ट्यूब के समान और सुषुम्णा उसमें रही पोल के समान है। इसके जागरण से आंतरिक ज्ञान का विकास होता है।

इड़ा में प्राण-प्रवाह होता है तब मस्तिष्क का दायां भाग सक्रिय होता है और पिंगला में प्राण-प्रवाह होता है तब मस्तिष्क का बायां भाग सक्रिय होता है। सुषुम्णा में प्राण-प्रवाह होने पर पूरा मस्तिष्क सक्रिय होता है। सुषुम्णा के साथ चैतन्यकेन्द्रों का गहन संबंध है। शक्तिकेन्द्र, स्वास्थ्य-केन्द्र, तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र इन सब चैतन्यकेन्द्रों का मूल रीढ़ की हड्डी में अवस्थित है, इसलिए अन्तर्यात्रा के साथ इन चैतन्यकेन्द्रों पर चित्त की यात्रा हो जाती है।

श्वासप्रेक्षा

जीवन और श्वास का अन्योन्य संबंध है। जहां जीवन है वहां श्वास है। जहां श्वास है वहां जीवन है।

हम नाक से श्वास लेते हैं। कभी श्वास बाएं नथुने से आता है और कभी दाएं नथुने से आता है। बाएं से श्वास आता है तो शरीर में शीतलता का अनुभव होता है। दाएं से श्वास आता है तो शरीर में ऊष्मा और सक्रियता का अनुभव होता है। दोनों नथुनों से श्वास आता है तब चित्त शांत हो जाता है।

ऊर्जा या प्राण के ग्रहण का सशक्त माध्यम है श्वास। वह निरंतर चलता है। प्राण का ग्रहण भी निरंतर चलता है।

श्वास ऐसा तत्त्व है, जो बाहर से भीतर जाता है और लौटकर भीतर से बाहर आता है। दूसरा ऐसा कोई भी आलम्बन नहीं है, जिसकी गति दोनों दिशाओं में हो।

यदि हम भीतर की यात्रा करना चाहें तो हमारे पास एकमात्र उपाय है कि हम चित्त को श्वास के रथ पर चढा दें और उसके साथ-साथ भीतर चले जाएं। हमारी अंतर्यात्रा प्रारंभ हो जाएगी, हम अंतर्मुखी हो जाएंगे, हम आध्यात्मिक बन जाएंगे। आध्यात्मिक बनने का सरल उपाय है—श्वास के साथ चित्त को जोड़ देना।

श्वास के प्रकार

श्वास के दो प्रकार होते हैं—

१. सहज श्वास। २. प्रयत्नजनित श्वास।

प्रयत्न के द्वारा श्वास की गति में परिवर्तन किया जा सकता है—छोटे श्वास को दीर्घ बनाया जा सकता है। साधना में विकास करने के लिए प्राणशक्ति की प्रचुरता अपेक्षित होती है। प्राणशक्ति के लिए श्वास का ईंधन चाहिए। श्वास का ईंधन जितना सशक्त होगा, प्राणशक्ति उतनी ही सशक्त होगी और प्राणशक्ति जितनी सशक्त होगी, हमारी साधना उतनी ही सशक्त होगी। श्वास को सशक्त बनाने के लिए ही हम उसे दीर्घ बनाते हैं।

सामान्यतः आदमी एक मिनिट में १५-१७ श्वास लेता है। उसके आस-पास दो स्थितियां बनती हैं। एक स्थिति है श्वास की संख्या को बढाने की और दूसरी स्थिति है श्वास की संख्या घटाने की। दूसरे शब्दों में एक स्थिति है श्वास की गति को छोटा करने की और दूसरी स्थिति है श्वास की गति को लम्बा करने की। लंबा श्वास या दीर्घश्वास जीवनीशक्ति और चेतना के विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

दीर्घश्वास के अभ्यास से कालांतर में मस्तिष्क की तरंगें प्रभावित होती हैं, जिससे शरीर के अन्य अंग व प्रणालियां भी प्रभावित होती हैं।

श्वास और मस्तिष्क

श्वास मस्तिष्क की ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाओं के बीच संपर्क सूत्र स्थापित करता है।

दाएं स्वर का प्रयोग— आक्रामक या श्रमसाध्य कार्य के समय।

बाएं स्वर का प्रयोग— सौम्य-शांत कार्य के समय।

दाएं-बाएं स्वर का मस्तिष्क के दाएं-बाएं गोलार्द्धों के साथ संबंध है।

श्वास प्रक्रिया और मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली में सीधा संबंध है।

श्वास और मस्तिष्क तरंगों का परस्पर संबंध है।

श्वास, भाव और मन

१. ध्यान में श्वास मंद हो जाता है। यदि श्वास को मंद करें तो ध्यान हो जाता है।

२. श्वास बदलने पर भाव बदल जाता है। भाव बदलने पर श्वास बदल जाता है। क्रोध का भाव उभरता है तब श्वास की गति बढ़ जाती है। शांति का भाव उभरने पर श्वास की गति मंद हो जाती है।

श्वास के द्वारा अंतरंग भावों को जाना जा सकता है। श्वास के प्रति जागरूक रहने वाला अंतरंग में उभरने वाले भाव के प्रति सहज ही जागरूक हो जाता है। वह उभरते भाव को बदल सकता है।

३. श्वास एक प्राणशक्ति है। प्राणशक्ति चेतना से जुड़ी हुई है, इसलिए श्वास को देखने का अर्थ है श्वास के साथ जुडी हुई प्राणधारा का अनुभव करना और प्राणधारा के अनुभव का अर्थ है उसकी आधारभूत चेतना का अनुभव करना ।

४. श्वास को देखने से 'मैं कौन हूं ? यह उलझा प्रश्न सुलझता है। श्वास दर्शन के लम्बे अभ्यास से प्राण और चैतन्य का स्पष्ट अनुभव हो जाता है।

आवेश और श्वास

आवेश की स्थिति में श्वास की संख्या बढ़ जाती है। श्वास छोटा होता है तो आवेश की अधिक संभावना रहती है। इसे सूत्र की भाषा में कहा जा सकता है—श्वास छोटा होता है तो आवेश आता है अथवा आवेश की स्थिति श्वास को छोटा बना देती है।

मन की एकाग्रता के लिए आवश्यक है श्वास की गति का लम्बा होना।

श्वास और हृदय

श्वास के साथ हृदय की गति का भी संबंध है। छोटे श्वास से हृदय को अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है। फलस्वरूप हृदय की गति अव्यवस्थित

और विकृत हो जाती है। फुफ्फुस का पूर्ण उपयोग नहीं होता, इसलिए वह भी रुग्ण हो जाता है। फुफ्फुस का जो भाग उपयोग में आता है, कार्य की अधिकता के कारण क्षतिग्रस्त हो जाता है।

दीर्घश्वास चेतना के विकास के लिए बहुत उपयोगी है।

शरीरप्रेक्षा

प्राणी जगत के पास प्रवृत्ति के तीन साधन हैं—१. शरीर २. वचन ३. मन। इन तीनों में शरीर का महत्त्व सर्वाधिक है। शरीर के बिना न वाणी हो सकती है और न मन हो सकता है।

हमारे ज्ञान का प्रथम स्रोत है इन्द्रियां। वे पांच हैं—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय। इन सबकी अवस्थिति शरीर में है।

मनुष्य का व्यवहार वचन से चलता है। वचन की उत्पत्ति शरीर के माध्यम से होती है। शरीर में पर्याप्ति-तंत्र है। उसका एक केन्द्र है—भाषा पर्याप्ति। इसके द्वारा भाषा के योग्य परमाणु पुद्गलों का ग्रहण होता है। दूसरे चरण में उनका वचन के रूप में परिणमन होता है। तीसरे चरण में उनका विसर्जन होता है, विस्फोट होता है। उस क्षण का नाम है वचन। वचन की प्रक्रिया शरीर के माध्यम से संपन्न होती है इसलिए वह शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं है।

मन की प्रक्रिया भी शरीर के द्वारा संपादित होती है। पर्याप्ति-तंत्र का एक तंत्र है मनःपर्याप्ति। इसके द्वारा चिन्तन-योग्य परमाणु पुद्गलों का ग्रहण होता है। दूसरे चरण में उनका मन के रूप में परिणमन होता है। तीसरे चरण में उनका विसर्जन होता है, विस्फोट होता है। उस क्षण का नाम है—मन। मन की प्रक्रिया शरीर के माध्यम से संपन्न होती है इसलिए वह शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं है।

वचन और मन की प्रक्रिया के आधार पर कहा जा सकता है कि वचन और मन की उत्पत्ति मनुष्य की इच्छा के अधीन है। वचन स्थाई

तत्त्व नहीं है। बोलने से पहले भाषा नहीं होती, बोलते समय भाषा होती है। बोलने का समय व्यतिक्रांत होने पर भाषा नहीं होती।[१]

मन भी स्थाई तत्त्व नहीं है। मनुष्य जब चिन्तन करना चाहता है तब मन की प्रक्रिया शुरू होती है और मन व्यक्त हो जाता है। पहले मन नहीं होता, मनन के समय मन होता है, मनन का समय व्यतिक्रांत होने पर मन नहीं होता।[२]

श्वसन, वचन और चिंतन– ये सब शरीर के माध्यम से होते हैं। श्वास की गति स्वाभाविक है। श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति के द्वारा श्वास के परमाणु पुद्गलों का ग्रहण, परिणमन और उत्सर्जन होता है। श्वास का क्रम निरन्तर चलता है। कुंभक अथवा श्वास-संयम के समय सूक्ष्म श्वास की क्रिया चालू रहती है।

शरीर श्वास, वचन और मन की प्रवृत्ति का आधार है। इन सबकी प्रवृत्ति का निरोध करने के लिए शरीर की चंचलता का निरोध करना आवश्यक है। शरीर की प्रवृत्ति के निरोध का प्रयोग है कायोत्सर्ग।

शरीर की स्थिरता मानसिक और वाचिक स्थिरता में सहायक बनती है।

शारीरिक स्थिरता की स्थिति में श्वास का निरोध भी आसान हो जाता है।

प्रेक्षाध्यान के दर्शन में मन से अधिक महत्त्व शरीर का है। मन ही मनुष्य के बंध और मोक्ष का कारण है, यह अवधारणा सापेक्ष है। मन की चंचलता ध्यान में बाधक है, इस दृष्टि से यह सिद्धांत निश्चित किया गया

---

१. **भगवई १३.१२५–पुव्विं भंते! भासा? भासिज्जमाणी भासा? भाससमय-वीतिक्कंता भासा?**
गोयमा! णो पुव्विं भासा, भासिज्जमाणी भासा, णो भाससमयवीतिक्कंता भासा।

२. **भगवई १३.१२६–पुव्विं भंते! मणे? मणिज्जमाणे मणे? मणसमय वीतिक्कंते मणे?**
गोयमा! नो पुव्विं मणे, मणिज्जमाणे मणे, नो मणसमयवीतिक्कंते मणे।

है। यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो एकाग्रता और ध्यान की सिद्धि में शरीर की चंचलता अधिक बाधक है। इसलिए ध्यान की साधना करने वाले व्यक्ति को शरीर के रहस्यों को जानने के लिए अधिक केन्द्रित होना चाहिए। उसके रहस्यों को जान लेने पर वचन और मन के रहस्य स्वयं जान लिए जाते हैं।

शरीर के प्रकार

शरीर के पांच प्रकार हैं–

१. औदारिक शरीर–स्थूल शरीर, जो स्थूल परमाणु-पुद्गलों से निष्पन्न होता है। इसमें सात धातुएं होती हैं–१. रस २. रक्त ३. मांस ४. मेद ५. अस्थि ६. मज्जा ७. शुक्र।

२. वैक्रिय शरीर–यह शरीर सूक्ष्म परमाणु-पुद्गलों से निर्मित होता है। इसमें रस, रक्त आदि धातुएं नहीं होतीं। इसमें परिवर्तन की शक्ति होती है।

३. आहारक शरीर–यह लब्धिधारक मुनियों द्वारा निर्मित होता है। इसके द्वारा दूरवर्ती व्यक्तियों से संपर्क किया जा सकता है, प्रश्नों का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

४. तैजस शरीर–यह विद्युत्मय शरीर है। इसकी सूक्ष्म ऊर्जा से पाचन होता है, दीप्ति होती है और भावतंत्र का निर्माण होता है। यह सूक्ष्म शरीर है। स्थूल शरीर और सूक्ष्मतम शरीर के मध्य सेतु का कार्य करता है।

५. कर्म (कार्मण) शरीर–यह सूक्ष्मतम शरीर है। यह कर्म के परमाणु-पुद्गलों द्वारा निर्मित होता है। इसमें अवस्थित कर्म के परमाणु–पुद्गलों द्वारा आत्मा प्रभावित होती है।

प्रेक्षाध्यान की साधना में दो शरीर उपयोगी हैं–१. औदारिक शरीर २. तैजस शरीर।

आसन, प्राणायाम, जप, आहार-संयम, उपवास, कायोत्सर्ग, श्वास-संयम, ध्यान आदि के द्वारा औदारिक शरीर के क्रियाचक्र में परिवर्तन किया जा सकता है।

चिंतन, अनुप्रेक्षा, शुभविषयक एकाग्रता, चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा, लेश्या-ध्यान आदि के द्वारा कर्मशरीर के प्रकम्पन, जो तैजस शरीर की ऊर्जा से मनुष्य के मस्तिष्क तक पहुंचते हैं,उनमें परिवर्तन किया जा सकता है, लेश्या का परिवर्तन किया जा सकता है।

शरीर और प्राण

औदारिक शरीर में छः पर्याप्तियां हैं। वे सब तैजस शरीर के संवादी-केन्द्र हैं। उनके माध्यम से प्राण के परमाणुओं का आकर्षण, परिणमन और उत्सर्जन होता रहता है। उनका रेखांकन इस प्रकार है—

पर्याप्तियां शक्तिस्रोत हैं और प्राण शक्तिकेन्द्र हैं। इनमें परस्पर कार्य-कारण का भाव प्रतीत होता हैं। शक्तिस्रोत कारण हैं और शक्तिकेन्द्र उनके कार्य हैं।

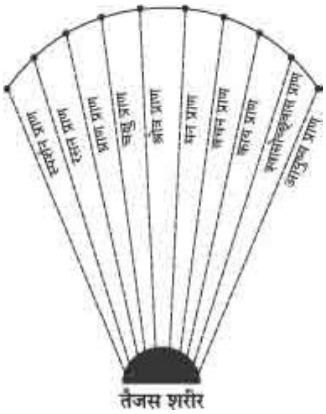

संख्या-विस्तार को संक्षेप में लाने पर दोनों की संख्या समान हो जाती है।

शक्तिस्रोत	**शक्तिकेन्द्र**
आहार पर्याप्ति	आयुष्य प्राण
शरीर पर्याप्ति	कायबल प्राण
इन्द्रिय पर्याप्ति	इन्द्रिय प्राण
श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति	श्वासोच्छ्वास प्राण
भाषा पर्याप्ति	वचनबल प्राण
मनःपर्याप्ति	मनोबल प्राण

ये शक्तिस्रोत और शक्तिकेन्द्र ही जीव और निर्जीव तत्त्व के बीच व्यावर्तक—भेद डालने वाले हैं। जिनमें आहार करने, शरीर रचना करने, इन्द्रिय रचना करने व श्वास लेने की शक्तियां हैं, वे जीव हैं और जिनमें ये शक्तियां नहीं हैं, वे निर्जीव हैं।

भाषा-शक्ति व चिंतन-शक्ति जीव के लक्षण नहीं हैं, किंतु वे विकास के अग्रिम सोपान हैं।

ये शक्ति-स्रोत जीवन के आरम्भ काल में ही निष्पन्न हो जाते हैं। इनकी क्रियाशीलता ही प्राणी का जीवन है।

प्राण स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर के बीच संबंध सूत्र है। वह स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर से जोड़ता है। श्वास का संबंध स्थूल शरीर से है, उसका वाहक तंत्र है—श्वसनतंत्र। श्वासोच्छ्वास प्राण सूक्ष्म है।

चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा

शरीर और आत्मा

आत्मा स्वभाव से अमूर्त्त है। वह शरीर के माध्यम से मूर्तवत् बन जाती है। वह अव्यक्त है। उसकी अभिव्यक्ति शरीर के माध्यम से होती है। हमारे शरीर का मुख्य भाग है नाड़ी संस्थान। वह आत्मा के आवास का मुख्य क्षेत्र है। उसके माध्यम से आत्मा की चेष्टाएं अभिव्यक्त होती हैं। जिस क्षेत्र में चेतना के प्रदेश, चैतन्यमय परमाणु अधिक परिमाण में एकत्र होते हैं, वह क्षेत्र चैतन्यकेन्द्र बन जाता है।

मनुष्य के शरीर में अनेक चैतन्यकेन्द्र हैं। साधना के द्वारा उनसे ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलती हैं और उनके आधार पर मनुष्यों को ज्ञान उपलब्ध होता है।

मनुष्य का नाड़ी संस्थान जितना शक्तिशाली है उतना किसी प्राणी का नहीं है। उसके नाड़ी संस्थान में दो विशेष प्रकार की शक्तियां हैं–

१. ज्ञान की शक्ति २. कार्य की शक्ति।

मनुष्य के ज्ञानवाही तंतु बहुत शक्तिशाली हैं। उनके द्वारा वह विशाल ज्ञान उपलब्ध कर सकता है, इन्द्रिय ज्ञान की पटुता प्राप्त कर सकता है और अतीन्द्रिय-चेतना का जागरण भी कर सकता है। इन्द्रिय-ज्ञान की सीमा को लांघकर सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान कर सकता है।

चैतन्यकेन्द्र और मर्म

मनुष्य के शरीर में १०७ मर्म स्थान हैं।[१] जिस स्थान में आत्मा के प्रदेश समुदित होकर रहते हैं, उस स्थान का नाम है मर्म[२]। चैतन्यकेन्द्र और

१. **सुश्रुतशारीरम् ६–सप्तोत्तरं मर्मशतम्।**

२. **स्याद्वादमंजरी पृ. ७७–बहुभिरात्मप्रदेशैरधिष्ठिता देहावयवा मर्माणि।**

मर्म स्थान दोनों की व्याख्या समान है, इसलिए इन दोनों को एक माना जा सकता है। आयुर्वेद में मर्मस्थान का विस्तृत वर्णन है। उसके अनुसार मर्मस्थान प्राण के केन्द्र हैं।

आयुर्विज्ञान (Medical Science) के अनुसार हमारे शरीर में अनेक ग्रंथियां हैं। योग के आचार्यों ने उन्हें चक्र कहा है।

क्यूसोस, ग्लैंड्स और चक्र

जापान में प्रचलित बौद्ध पद्धति 'जूडो' में उन्हें क्यूसोस (Kyushos) कहते हैं। यह एक आश्चर्यकारी बात है—आज के शरीरशास्त्रियों ने ग्लैण्ड्स के जो स्थान और आकार माने हैं—योग के आचार्यों ने चक्र के जो स्थान और आकार निर्दिष्ट किए हैं और जूडो पद्धति में क्यूसोस के जो स्थान और आकार माने हैं, वे तीनों समान हैं, उनमें विशेष अंतर नहीं है। तीनों की धारणा समान है।

क्र.सं.	जूडो क्यूसोस	ग्लैंड्स	चक्र
१.	टेन्डो (Tendo)	Pineal Body Glands	सहस्रार चक्र
२.	उतो (Uto)	Pituitary Glands	आज्ञा चक्र
३.	हिचू (Hichu)	Thyroid Glands	विशुद्धि चक्र
४.	क्योटोट्सु (Kyototsu)	Thymos Glands	अनाहत चक्र
५.	सुइगेट्स (Suigetsu)	Adrenal Glands	मणिपुर चक्र
६.	माइओजो (Myojo)	Gonad Glands	स्वाधिष्ठान चक्र
७.	सुरगिने (Tsurigane)	Gonad Glands	मूलाधार चक्र

प्रेक्षाध्यान साधना की पद्धति के चैतन्यकेन्द्र उक्त क्यूसोस, ग्लैण्ड्स और चक्रों से तुलनीय हैं।

चैतन्यकेन्द्र की शृंखला में निम्नलिखित तेरह केन्द्र हैं, जिनमें अनेक केन्द्र अन्तःस्रावी ग्रन्थियों एवं शरीर के अन्य अवयवों के साथ संबंधित हैं—

क्र.स.	नाम	किस ग्रंथि/अवयव से संबंध	स्थान
१.	शक्तिकेन्द्र	गोनाड्स (कामग्रंथि)	पृष्ठ-रज्जु के नीचे के छोर पर
२.	स्वास्थ्यकेन्द्र	गोनाड्स (कामग्रंथि)	पेडू; नाभि से चार अंगुल नीचे
३.	तैजसकेन्द्र	एड्रीनल, पेन्क्रियाज	नाभि
४.	आनन्दकेन्द्र	थायमस	हृदय के मध्य
५.	विशुद्धिकेन्द्र	थायराइड, पेराथायराइड	कंठ के मध्य
६.	ब्रह्मकेन्द्र	रसनेन्द्रिय	जिह्वाग्र
७.	प्राणकेन्द्र	घ्राणेन्द्रिय	नासाग्र
८.	चाक्षुषकेन्द्र	चक्षुरिन्द्रिय	आंख का बाह्य व भीतरी भाग
९.	अप्रमादकेन्द्र	श्रोत्रेन्द्रिय	कान का बाह्य व भीतरी भाग
१०.	दर्शनकेन्द्र	पिट्युटरि (पीयूष)	भृकुटियों के मध्य
११.	ज्योतिकेन्द्र	पीनियल	ललाट के मध्य
१२.	शांतिकेन्द्र	हाइपोथेलेमस	मस्तिष्क का अग्र भाग
१३.	ज्ञानकेन्द्र	मस्तिष्क	सिर के ऊपर का भाग

लेश्याध्यान

लेश्या—चैतन्य की रश्मि, तैजस शरीर के साथ कार्य करने वाली चेतना। प्रशस्त-अप्रशस्त भावधारा और उसमें हेतुभूत कृष्ण यावत् शुक्ल वर्ण वाले पुद्गल।[१]

१. चित्त की तरह लेश्या भी चैतन्य की रश्मि है। यह तैजस शरीर के साथ कार्य करने वाली चेतना है।

२. विशेष प्रकार के पुद्गल (जिनमें कृष्ण आदि वर्णों की प्रधानता है)—द्रव्यों के सहयोग से होने वाला आत्मा का परिणमन लेश्या है।

आत्मा की सूक्ष्मतम अवस्था अध्यवसाय है, जिसकी परिभाषा है—वह चेतना, जो कर्म शरीर के साथ काम करती है।[२] अध्यवसाय ज्ञेयात्मक भी हैं, रागात्मक एवं द्वेषात्मक भी हैं।

आत्मा से निकलने वाली चैतन्य की रश्मियां (अध्यवसाय) कर्म शरीर द्वारा निर्मित कषाय के वलय का भेदन कर ज्योंही बाहर आती हैं, वे अध्यवसाय कषाय से प्रभावित होकर अशुभ अध्यवसाय के रूप में बदलकर सूक्ष्म से स्थूल की ओर आगे बढ़ते हैं तथा इस गतिक्रम में वे तैजस शरीर तक पहुंच जाते हैं। वहां तैजस शरीर के स्पन्दन, जो वैज्ञानिक दृष्टि से Electro-Magnetic (विद्युत्-चुम्बकीय) विकिरण के रूप में होते हैं, उन अशुभ अध्यवसायों के स्पन्दनों के साथ मिलकर लेश्या-वर्गणा के रंगीन स्पन्दनों को आकृष्ट कर चैतन्य और कर्म शरीर के स्पन्दनों को लेश्या के रूप में बदल देते हैं।

---

१. जैन पारिभाषिक शब्दकोश।

२. वही

कषाय से रंजित होने के कारण उन अशुभ अध्यवसायों का परिणमन अशुभ लेश्या के रूप में हो जाता है। कषाय का वलय मंद शक्ति वाला होता है अथवा उपशांत या क्षीणशक्ति वाला होता है, जिसे क्रमशः कषाय की क्षायोपशमिक, औपशमिक अथवा क्षायिक अवस्था के रूप में जाना जाता है। कषाय से अल्परंजित होने के कारण अथवा कषाय से अरंजित होने के कारण उन शुभ अध्यवसायों का परिणमन शुभ लेश्या के रूप में हो जाता है।

व्यक्तित्व का रूपांतरण लेश्या की चेतना के स्तर पर हो सकता है। लेश्याएं अच्छी होंगी, तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। लेश्याएं बुरी होंगी, तो व्यक्तित्व बदल जाएगा। दोनों ओर बदलेगा, रूपान्तरण घटित होगा।

प्रश्न होता है कि वहां तक कैसे पहुंचे? हमें रंग का सहारा लेना होगा। रंग हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। रंग स्थूल व्यक्तित्व, सूक्ष्म व्यक्तित्व, तैजस शरीर और लेश्यातन्त्र को भी प्रभावित करते हैं। यदि हम रंगों की क्रियाओं और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझ लेते हैं, तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण में हमें बड़ा सहयोग मिल सकता है।

लेश्याध्यान के द्वारा ये तीनों लेश्याएं बदल जाती हैं। कृष्ण लेश्या शुद्ध होते-होते नील लेश्या, नील लेश्या कापोत लेश्या और कापोत लेश्या तेजो लेश्या बन जाती है। हमारी अध्यात्म की यात्रा तेजो लेश्या से—लाल रंग से शुरू होती है। तेजो लेश्या का रंग है—बाल सूर्य जैसा। रंग का मनोविज्ञान बताता है कि अध्यात्म की यात्रा लाल रंग से शुरू होती है। तेजो लेश्या में आते ही आदतों में अपने-आप परिवर्तन होने लग जाता है। उनमें स्वभावतः रूपान्तरण शुरू हो जाता है। तेजोलेश्या पद्म लेश्या में बदलती है। शुक्ल लेश्या में पहुंचते ही व्यक्तित्व का पूरा रूपान्तरण (Transformation) हो जाता है।

भावधारा (लेश्या) के आधार पर आभामण्डल बदलता है और लेश्या-ध्यान के द्वारा आभामण्डल को बदलने से भावधारा भी बदल जाती

है। इस दृष्टि से लेश्याध्यान या चमकते हुए रंगों का ध्यान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमारी भावधारा जैसी होती है, उसी के अनुरूप मानसिक चिंतन तथा शारीरिक मुद्राएं होती हैं। इस भूमिका में लेश्याध्यान की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। लेश्या में चेतना की रश्मियां और तैजस शरीर की रश्मियां—इन दोनों का योग होता है। इसलिए वह चैतन्यमय भी है और पौद्गलिक भी है। चैतन्यमय लेश्या के लिए भावलेश्या और पौद्गलिक लेश्या के लिए द्रव्यलेश्या का प्रयोग किया जाता है। भावलेश्या का कोई रंग नहीं है। द्रव्यलेश्या के अनेक रूप हैं, अनेक रंग हैं। द्रव्यलेश्या के प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकार के रंग चित्त को प्रभावित करते हैं। यदि चित्त बलवान होता है तो वह रंगों में परिवर्तन भी कर देता है। बाहर के रंग भी अपना प्रभाव डालते हैं, उनसे भी चित्त वृत्तियां प्रभावित हो जाती हैं।

मंत्र-ध्यान

जीवन की दिशा का परिवर्तन और दृष्टिकोण का परिवर्तन—यह प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन है। मंत्र की आराधना भी प्रेक्षाध्यान का ही एक अंग है। प्रेक्षाध्यान की पूरी प्रक्रिया दृष्टिकोण बदलने की प्रक्रिया है।

मंत्र क्या है? मंत्र एक प्रतिरोधात्मक शक्ति है। मंत्र एक कवच है। मंत्र एक प्रकार की चिकित्सा है। मंत्र-साधना कवच बनाने की साधना है। इससे आने वाले प्रकम्पनों के प्रहारों से बचा जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर आभामण्डल होता है, अच्छा विचार होता है, तो अच्छा आभामण्डल बन जाता है। बुरा विचार होता है, तो बुरा आभामण्डल बन जाता है। अच्छा परिणाम अच्छी लेश्या। बुरा परिणाम बुरी लेश्या। हम मंत्र शक्ति का उपयोग करें और शब्दों की ऐसी संयोजना करें कि ऊर्जा का आभामण्डल बने। हम उस शब्द-विन्यास का उच्चारण करें। सूक्ष्म उच्चारण करें या सूक्ष्मातिसूक्ष्म उच्चारण करें। उससे ऊर्जा का आभावलय निर्मित होगा। वह इतना शक्तिशाली और इतना प्रतिरोधात्मक बनेगा कि बाहर की कोई भी शक्ति आक्रमण नहीं कर पाएगी।

शब्द में अनंत शक्ति होती है। मंत्र शक्ति का मुख्य तत्त्व है शब्द की संयोजना। किस उद्देश्य से मंत्र का उपयोग करना है, उस आधार पर शब्द की संयोजना की जाती है। जैसे रसायनशास्त्री जानता है कि किन-किन द्रव्यों को मिलाने से कौन सा द्रव्य बनता है, वैसे ही मंत्रविद् जानता है कि किन-किन शब्दों की संयोजना से किस प्रकार की तरंगें पैदा होंगी, वे परमाणुओं को कैसे प्रकंपित करेंगी और उनकी परिणति किस प्रकार की होगी।

मंत्र विकल्प से निर्विकल्प तक पहुंचने की प्रक्रिया है। मंत्र सविचार

से निर्विचार तक पहुंचने की पद्धति है। मंत्र का प्रमुख तत्त्व है—शब्द या ध्वनि। शब्द भाषात्मक होता है और ध्वनि झंकार रूप होती है, अव्यक्त होती है। शब्द का अर्थ के साथ कोई सीधा संबध नहीं होता। शब्द और अर्थ में कुछ दूरी होती है। ध्वनि अर्थ के कुछ निकट चली जाती है।

मंत्र साधना में महत्त्वपूर्ण है—श्रद्धा। श्रद्धा का अर्थ है—तीव्रतम आकर्षण। यदि मंत्र के प्रति हमारी कोई श्रद्धा नहीं है, कोई आकर्षण नहीं है, दृढ़ विश्वास नहीं है तो चाहे वर्ण का ठीक समायोजन हो, ठीक उच्चारण हो तो जो भी घटित होना चाहिए, वह घटित नहीं हो सकता। केवल श्रद्धा के बल पर जो घटित हो सकता है, वह श्रद्धा के बिना घटित नहीं हो सकता।

मंत्र शब्दात्मक होता है। उसमें अचिन्त्य शक्ति होती है, उसके द्वारा आत्मिक जागरण किया जा सकता है, अध्यात्म के द्वार खोले जा सकते हैं, व्यक्ति अंतर्मुखी बन सकता है और पूरा आध्यात्मिक बन सकता है।

मंत्र के द्वारा आध्यात्मिक जागरण संभव है, यह जान लेना चाहिए। यदि मंत्रों को आध्यात्मिक जागरण में प्रयोग किया जाए तो आध्यात्मिक जागरण में सरलता और सहजता आ जाती है।

दीर्घश्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा, लेश्याध्यान आदि के द्वारा बहुत लोग लम्बी यात्रा न कर सकें, किंतु मंत्र के माध्यम से अनेक व्यक्ति अध्यात्म की दिशा में लम्बी यात्रा कर सकते हैं।

प्राण की धारा जब सुषुम्णा में प्रवाहित होने लगती है तब आध्यात्मिक जागरण प्रारम्भ होता है। अध्यात्म जागरण का पहला बिंदु या उस यात्रा पथ का पहला चरण है—सुषुम्णा में प्राणधारा का प्रवेश। मंत्र के द्वारा हम ऐसी सूक्ष्म ध्वनि-तरंगें पैदा करते हैं कि सुषुम्णा के द्वार खुल जाते हैं और व्यक्ति में आध्यात्मिक जागृति की किरण फूट पड़ती है।

अनुप्रेक्षा

अनुप्रेक्षा का तात्पर्य है—

१. चेतना के रूपान्तरण के लिए किया जानेवाला अनुचिन्तनात्मक अभ्यास।

२. पुरानी आदतों को बदलने के लिए और नई आदतों के प्रत्यारोपण के लिए किया जानेवाला अनुचिन्तनात्मक अभ्यास।

सत्य को जानना ज्ञान है और सत्य को आत्मसात् करना साधना है। अनुप्रेक्षा के द्वारा अधिगत सत्य को आत्मसात् किया जाता है । जैसे अग्नि लोह के कण-कण में प्रविष्ट होकर लोह को अग्निमय बना देती है, वैसे ही ज्ञात सत्य को मानसिक अभ्यास के द्वारा चित्त में प्रविष्ट कर, तद्रूप परिणत कर उसे आत्मसात् किया जा सकता है।[१]

जो ज्ञान अस्थि, मज्जा तक पहुंच जाता है वह संस्कारगत बन जाता है। अनुप्रेक्षा संस्कार निर्माण की साधना है।[२]

स्थूल चेतना द्वारा जो ज्ञात होता है, वह ज्ञान की कक्षा में चला जाता है। वह मानसिक अभ्यास परावर्तन, अनुगुंजन के द्वारा सूक्ष्म चेतना तक पहुंचता है तब वह ज्ञान आत्मगत बन जाता है, आचरणगत बन जाता है।

तत्त्वार्थसूत्र में बारह अनुप्रेक्षाओं का उल्लेख है[३]—

---

१. **चारित्रसार, पृसं. ६७—अधिगतपदार्थप्रक्रियस्य तप्तायःपिण्डवदर्पितचेतसः मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा।**

२. **धवला पृसं. २६३—कम्मणिज्जरणट्ठमट्ठिमज्जाणुगयस्स सुदणाणस्स परिमलणमणुपेक्खणा णाम।**

३. **तत्वार्थसूत्र ९.७—अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्याश्रवसंवरनिर्जरा-लोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षा।**

१. अनित्य
२. अशरण
३. संसार
४. एकत्व
५. अन्यत्व
६. अशुचि
७. आश्रव
८. संवर
९. निर्जरा
१०. लोक
११. बोधिदुर्लभ
१२. स्वाख्यात धर्म।

अनु का अर्थ है पुनः पुनः, प्रेक्षण का अर्थ है चिन्तन और स्मरण। वस्तु अनित्य है। यह सामान्य बोध है, सब जानते हैं। इसके साथ मेरा संबंध है वह अनित्य है, प्रमादवश इसकी स्मृति नहीं रहती। व्यवहार काल में मनुष्य यह भूल जाता है कि यह संबंध अनित्य है। अनुप्रेक्षा के द्वारा मानसिक अभ्यास, उसकी अनित्यता का बार-बार चिंतन, स्मरण और अनुशीलन किया जाता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा गृहीत अथवा संकलित विषय से चित्त को भावित करना।

प्रेक्षाध्यान में वृत्ति परिष्कार की दृष्टि से हमने अनुप्रेक्षाओं के अनेक प्रयोग निश्चित किए हैं, जैसे—सहिष्णुता, अभय, ऋजुता, मृदुता, धैर्य, अनासक्ति, मानसिक संतुलन, आत्मानुशासन, सत्य आदि।

प्रेक्षाध्यान का परिकर

प्रेक्षाध्यान की पद्धति में आसन, प्राणायाम, मुद्रा और ध्वनि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

१. आसन

अध्यात्म की भूमिका में आसन करने का मुख्य उद्देश्य है कर्म निर्जरा। तपस्या के बारह प्रकारों में एक प्रकार है कायक्लेश। आसन उसी का एक अंग है। निर्जरा के साथ प्रासंगिक रूप में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य भी उपलब्ध होता है।

पद्मासन, अर्द्ध-पद्मासन, सुखासन और वज्रासन—ये ध्यानासन हैं। ध्यान के समय इन आसनों में बैठना अधिक उपयोगी है।

ध्यान और स्वास्थ्य के संबंध को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वस्थ व्यक्ति ध्यान की साधना में बहुत शीघ्र आगे बढ़ सकता है। ध्यान का पाचनतंत्र पर प्रभाव होता है, अग्नि मंद होती है। आसन के अभ्यास द्वारा उस समस्या का निराकरण किया जा सकता है।

पाचनतंत्र, रक्त-परिसंचरणतंत्र आदि व्यवस्थित होते हैं तभी ध्यान में मन एकाग्र हो सकता है । आसन के द्वारा उन्हें व्यवस्थित किया जा सकता है।

आसन के अभ्यास से ग्रंथितंत्र प्रभावित होता है तथा विभिन्न चैतन्यकेन्द्र जागृत होते हैं। इससे वृत्तियों में भी परिवर्तन होता है। उदाहरणस्वरूप, क्रोध की वृत्ति को अनुशासित करने के लिए शशांकासन आवश्यक है। सर्वांगासन की भी वृत्ति रूपान्तरण में महत्वपूर्ण भूमिका है।

वर्तमान शारीरिक स्थिति का ध्यान में रखकर हमें आसनों का चयन करना चाहिए। कठोर आसनों की वर्जना बहुत आवश्यक है।

२. प्राणायाम

फुफ्फुस को शक्तिशाली बनाए रखने के लिए प्राणायाम आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान की साधना में भस्त्रिका जैसे तीव्र प्राणायाम की वर्जना अपेक्षित है।

प्राणायाम का भी प्रेक्षाध्यान में बहुत महत्त्व है। श्वास पर नियंत्रण किए बिना वृत्तियों का और भावों का परिष्कार नहीं हो सकता। हमारी जितनी भी वृत्तियां हैं, चाहे वे निषेधात्मक हो या विधेयात्मक–सबके साथ श्वास का संबंध है। गहरा और लम्बा श्वास विधेयात्मक भावों के लिए उपयुक्त है। नाड़ी तंत्र का परिष्कार भी श्वास पर ही निर्भर है। हीन भावना (Inferiority Complex) और उच्च भावना (Superiority Complex) से ग्रसित होना निषेधात्मक भाव है। वैज्ञानिक दृष्टि से सिम्पैथेटिक और पेरासिम्पेथेटिक तथा योग की दृष्टि से इड़ा और पिंगला का संतुलन भी प्राणायाम के माध्यम से किया जाता है।

३. मुद्रा

प्रेक्षाध्यान भाव परिवर्तन की प्रक्रिया है। जैसे हमारे भाव होते हैं वैसी ही हमारे शरीर की मुद्राएं बनती हैं। अगर हम आलस्य में है तो शरीर की वैसी ही मुद्रा बनेगी। अगर शोक में है तो वैसी मुद्रा बनेगी। इस तरह प्रसन्नता, धैर्य, जिज्ञासा, अहंकार, क्रोध, लोभ, आसक्ति, घृणा आदि जितने भी भाव हैं, उतनी ही उनकी मुद्राएं स्पष्टतया शरीर पर दृष्टिगोचर होने लगती हैं। प्रेक्षाध्यान का एक उद्देश्य है–निषेधात्मक भावों का निरसन और विधेयात्मक भावों का विकास। अगर हम विधेयात्मक भावों की मुद्राएं ध्यान काल में अथवा जीवन में निरन्तर काम में लें, तो भीतर में हमारे भाव उसी अनुपात में बदलते नजर आएंगे, इसलिए प्रेक्षाध्यान साधना में जिस प्रकार आसनों का महत्त्व है, उसी प्रकार मुद्राओं का भी महत्त्व है।

खड़े-खड़े ध्यान करने के लिए प्रलम्बित भुज-हाथ सीधे रखने का

उल्लेख मिलता है। बैठकर ध्यान करना हो तो हाथ नाभि से कुछ नीचे गोद पर पेडू से सटे हुए हों, बाएं हाथ पर दाएं हाथ की अवस्थिति हो। यह एक प्रकार की ध्यान मुद्रा है। ध्यान के लिए सबसे अच्छी स्थिति खड़े-खड़े ध्यान करना है, क्योंकि उसमें ऊर्जा का पूरा वलय बनता है। बैठकर ध्यान करने से कुछ अवरोध आ सकता है। फिर भी अभ्यास काल में बैठे-बैठे ध्यान का प्रयोग करवाया जाता है। यह मध्यम स्थिति है। अभ्यासार्थी साधकों के लिए यही अधिक उपयुक्त है।

४. ध्वनि

हमारी प्राणशक्ति को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण उपाय है ध्वनि तरंगे। भिन्न-भिन्न ध्वनियों की भिन्न-भिन्न तरंगे होती है।

ध्वनि के प्रकम्पन आकाशमंडल में भी परिवर्तन करते हैं और व्यक्ति को भी प्रभावित करते हैं। साधना करने वाला व्यक्ति मंत्र का उच्चारण करता है। उस समय मंत्र की ध्वनि के प्रकम्पन साधक के स्थूल शरीर को प्रभावित करते हैं। मुख्यतया मेरुदण्ड (Spinal cord) और मस्तिष्कीय न्यूरोन्स को प्रभावित करते हैं। ध्वनि-प्रकम्पन की तीव्रता बढ़ती है और बढ़ने के साथ-साथ वे सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार ध्वनि के द्वारा रोग-मुक्ति, आदतों में परिवर्तन और आंतरिक विकास होता है। यदि मंत्र-जप का लक्ष्य कोई दूसरे व्यक्ति और घटना में परिवर्तन करना होता है तो ध्वनि प्रकम्पन सुदूर प्रदेश में जाकर लक्ष्य के अनुरूप कार्य कर देते हैं।

प्रेक्षाध्यान के प्रयोग-काल में 'अर्हम्' की ध्वनि की जाती है। यह एक शक्तिशाली मंत्र है। यह हमारी प्राणशक्ति को शक्तिशाली बनाने वाला और अर्हता का बोध कराने वाला प्रयोग है।

प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति

प्रेक्षाध्यान

ध्यान की पूर्व तैयारी

ध्यानासन

जिस आसन में आप लंबे समय तक सुविधापूर्वक स्थिरता से बैठ सकें, उस ध्यानासन का चुनाव करें। जैसे—पद्मासन, अर्धपद्मासन, सुखासन या व्रजासन।

मुद्रा

वीतराग-मुद्रा

दोनों हथेलियों को नाभि के नीचे स्थापित करें। बाईं हथेली नीचे और दाईं हथेली ऊपर रहे।

ध्यान-मुद्रा

आंखों को बिना दबाव दिए कोमलता से बन्द करें।

अर्हं की ध्वनि

नौ बार अर्हं की ध्वनि करें।

ध्येय-सूत्र

'संपिक्खइ अप्पगमप्पएणं' (तीन बार दोहराएं)

आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें। स्वयं-स्वयं को देखें।

ध्यान का संकल्प

मैं चित्त-शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कर रहा हूं। (तीन बार दोहराएं)

ध्यान का पहला चरण

कायोत्सर्ग

- शरीर को स्थिर और शिथिल करें।
- प्रतिमा की भांति शरीर को स्थिर रखें। हलन चलन न करें। पूरी स्थिरता।
- सुझाव दें पूरा शरीर शिथिल हो जाए। शिथिल हो जाए। शिथिल हो जाए।
- अनुभव करें-पूरा शरीर शिथिल हो रहा है। शिथिल हो रहा है। शिथिल हो रहा है।
- अनुभव करें–पूरा शरीर शिथिल हो गया है। शिथिल हो गया है। शिथिल हो गया है।
- पूरे ध्यान काल तक कायोत्सर्ग की मुद्रा बनी रहे। (कायोत्सर्ग ५ मिनिट)

ध्यान का दूसरा चरण

अन्तर्यात्रा

- चित्त को शक्तिकेन्द्र पर ले जाएं।
- ऊपर उठाएं, सुषुम्णा के मार्ग से ज्ञानकेन्द्र तक लाएं।
- फिर उसी मार्ग से शक्तिकेन्द्र तक नीचे लाएं।
- नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे सुषुम्णा में चित्त की यात्रा करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकंपनों का अनुभव करें।
- पूरी चेतना को सुषुम्णा में समेट लें।
- (दो मिनिट बाद)–चित्त को श्वास के साथ जोड़ें। श्वास लेते समय चित्त को ऊपर से नीचे लाएं और श्वास छोड़ते समय चित्त को नीचे से ऊपर ले जाएं।

ध्यान का तीसरा चरण

दीर्घश्वास प्रेक्षा

- श्वास की गति को मन्द करें। धीरे-धीरे लम्बा श्वास लें। धीरे-धीरे लम्बा श्वास छोड़ें। श्वास को लयबद्ध और समताल करें। पहली बार श्वास को लेने और छोड़ने में जितना समय लगे, उतना ही समय प्रत्येक श्वास को लेने और छोड़ने में लगे।
- श्वास के कम्पन नाभि तक पहुंचे। श्वास लेते समय पेट की मांसपेशियां फूलती हैं, छोड़ते समय सिकुड़ती हैं। चित्त को नाभि पर केन्द्रित करें और पेट की मांसपेशियों के फूलने और सिकुड़ने का अनुभव करें तथा आते जाते श्वास का अनुभव करें।
- यदि विकल्प आते हैं, तो उन्हें रोकने का प्रयत्न न करें। केवल द्रष्टाभाव से देखें और बीच-बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें।
- गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास करें।
- चित्त को नाभि से हटाकर नथुनों के भीतर संधिस्थल पर केन्द्रित करें। आते-जाते प्रत्येक श्वास का अनुभव करें।
- प्रत्येक श्वास को जानते हुए लें, जानते हुए छोड़ें। चित्त की सारी शक्ति श्वास को देखने में लगा दें। केवल श्वास का अनुभव करें।
- श्वास के प्रति जागरूक रहें।

ध्यान का तीसरा चरण

समवृत्तिश्वास प्रेक्षा

- श्वास की गति को मंद करें। धीरे-धीरे लम्बा श्वास लें। धीरे-धीरे लम्बा श्वास छोड़ें। श्वास के कम्पन नाभि तक पहुंचे।
- श्वास को लयबद्ध और समताल करें। पहली बार श्वास को लेने और छोड़ने में जितना समय लगे उतना ही समय प्रत्येक श्वास को लेने और छोड़ने में लगे।

- बाएं नथुने से श्वास लें, दाएं नथुने से श्वास छोड़ें। फिर दाएं नथुने से श्वास लें, बाएं नथुने से श्वास छोड़ें। संकल्पशक्ति के द्वारा ऐसा करें। यदि संकल्प के सहारे न कर सकें तो अंगुली और अंगूठे के सहारे करें। श्वास के साथ चित्त को जोड़ें। चित्त और श्वास दोनों साथ-साथ चलें। केवल श्वास का अनुभव करें। समवृत्तिश्वास प्रेक्षा।
- चित्त और श्वास दोनों साथ-साथ चलें।

  श्वास भीतर, चित्त भीतर। श्वास बाहर, चित्त बाहर।
- श्वास संयम के साथ समवृत्तिश्वास प्रेक्षा का प्रयोग करें।

  १. बाएं नथुने से श्वास लें, उसे भीतर रोकें।

  २. दाएं नथुने से श्वास छोड़ें, उसे बाहर रोकें।

  ३. दाएं नथुने से श्वास लें, उसे भीतर रोकें।

  ४. बाएं नथुने से श्वास छोड़ें, उसे बाहर रोकें।
- इस प्रकार श्वास संयम के साथ प्रयोग करते रहें।
- यह ध्यान रहे कि जितने समय तक सुविधा से रोक सकते हैं, उतने समय तक रोकें। जबरदस्ती बिल्कुल न करें। श्वास के प्रति पूर्ण जागरूक रहें।

ध्यान का तीसरा चरण

शरीर प्रेक्षा

- चित्त को दाएं पैर के अंगूठे पर केन्द्रित करें। पूरे भाग में चित्त की यात्रा करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। प्रियता और अप्रियता से मुक्त रहकर केवल द्रष्टा भाव से देखें।
- इसी प्रकार दाएं पैर के प्रत्येक अवयव की प्रेक्षा करें-अंगुलियां.... पंजा.... तलवा.... एड़ी.... टखना.... पिण्डली.... घुटना.... जंघा.... और कटि भाग। पूरे भाग की प्रेक्षा करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।
- इसी प्रकार बाएं पैर के प्रत्येक अवयव की प्रेक्षा करें। अंगूठा.... अंगुलियां.... पंजा.... तलवा.... एड़ी.... टखना.... पिण्डली....

घुटना.... जंघा.... और कटि भाग। पूरे भाग की प्रेक्षा करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

- वस्ति प्रदेश और पेडू की प्रेक्षा करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। केवल द्रष्टा भाव से देखें।
- पेट के प्रत्येक अवयव की प्रेक्षा करें—दायां गुर्दा, बायां गुर्दा.... बड़ी आंत.... छोटी आंत.... अग्न्याशय.... पक्वाशय.... आमाशय.... तिल्ली.... यकृत.... और तनुपट....
- वक्षस्थल के पूरे भाग की प्रेक्षा करें—दायां फेफड़ा..... बायां फेफड़ा..... हृदय..... पीठ का पूरा भाग..... मेरूदण्ड..... इड़ा..... पिंगला.... सुषुम्णा.... सुषुम्णा शीर्ष.... गर्दन।
- दाएं हाथ की प्रेक्षा करें-अंगूठा.... अंगुलियां.... हथेली.... मणिबंध.... मणिबंध से कोहनी.... कोहनी से कंधे तक।
- इसी प्रकार बाएं हाथ की प्रेक्षा करें-अंगूठा.... अंगुलिया.... हथेली.... मणिबंध.... मणिबंध से कोहनी.... कोहनी से कंधे तक।
- कण्ठ.... और स्वरयंत्र की प्रेक्षा करें।
- ठुड्डी....होठ....मसूढ़े....दांत....जीभ....तालु....दायां कपोल.... बायां कपोल....नाक....दाईं कनपटी....दायां कान....बाईं कनपटी ....बायां कान ....दाईं आंख ....बाईं आंख ....ललाट और सिर प्रत्येक अवयव की प्रेक्षा करें।
- अब एक साथ पूरे शरीर की प्रेक्षा करें। जो आसानी से खड़े-खड़े कर सकते हैं, वे खड़े-खड़े करें
- चित्त में यह क्षमता है कि वह एक बिन्दु पर भी केन्द्रित हो सकता है और एक साथ पूरे शरीर में भी फैल सकता है। चित्त को दोनों पैर के दोनों अंगूठों पर केन्द्रित करें। पूरे शरीर के आकार में फैलाते हुए पैर से सिर तक शीघ्रता से ले जाएं। उसी गति से सिर से पैर तक लाएं बीच-बीच में श्वाससंयम के साथ शरीरप्रेक्षा का प्रयोग करें।
- शरीर के कण-कण का स्पर्श करें। शरीर का कण-कण प्राण के प्रवाह

से झंकृत हो उठे। अनुभव करें, जैसे पूरे शरीर में बिजली की धारा दौड़ रही है। कपड़े का स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द, स्पन्दन जो कुछ हो रहा है, उसका तटस्थ भाव से अनुभव करे।

- अब धीमी गति से चित्त की यात्रा चले। कहीं पीड़ा, अवरोध हो उस स्थान पर कुछ क्षणों के लिए रुकें। केवल जानें, पूर्ण समभाव रखें।

ध्यान का तीसरा चरण

चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा

१. **शक्तिकेन्द्र**– 'चित्त को शक्तिकेन्द्र–पृष्ठ रज्जु के निचले छोर पर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ शक्तिकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

२. **स्वास्थ्यकेन्द्र**– चित्त को स्वास्थ्यकेन्द्र–पेडू के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ स्वास्थ्यकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

३. **तैजसकेन्द्र**– चित्त को तैजसकेन्द्र–नाभि पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ तैजसकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

४. **आनन्दकेन्द्र**– चित्त को आनन्दकेन्द्र–हृदय के पास दोनों फुफ्फुस के बीच जो गड्ढ़ा है, वहां केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ आनन्दकेन्द्र केन्द्र की प्रेक्षा करें।

५. **विशुद्धिकेन्द्र**– चित्त को विशुद्धिकेन्द्र–कण्ठ के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। आगे से पीछे सुषुम्णा तक चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ प्राणकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

६. **ब्रह्मकेन्द्र**– चित्त को ब्रह्मकेन्द्र–जीभ के अग्रभाग पर केन्द्रित करें।

जीभ अधर में रहे। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ ब्रह्मकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

७. **प्राणकेन्द्र**– चित्त को प्राणकेन्द्र–नासाग्र पर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ प्राणकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

८. **अप्रमादकेन्द्र**– चित्त को दाएं कान के भीतरी, मध्य और बाहरी भाग तथा आस-पास के भाग पर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

चित्त को बाएं कान के भीतर, मध्य और बाहरी भाग तथा आस-पास के भाग पर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ अप्रमादकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

९. **चाक्षुषकेन्द्र**– चित्त को दाईं आंख के भीतरी केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

चित्त को बाईं आंख के भीतर केन्द्रित करें। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

१०. **दर्शनकेन्द्र**– चित्त को दर्शनकेन्द्र–दोनों भृकुटियों के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। भीतर गहराई में चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ दर्शनकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

११. **ज्योतिकेन्द्र**– चित्त को ज्योतिकेन्द्र–ललाट के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। मस्तिष्क के आगे से पीछे के भाग तक चित्त को ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ ज्योतिकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

१२. **शान्तिकेन्द्र**– चित्त को शान्तिकेन्द्र–सिर के अग्र भाग पर केन्द्रित करें। दीये का प्रकाश चारों दिशाओं में फैलता है वैसे ही चित्त को भीतर गहराई तक ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें। गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ शान्तिकेन्द्र की प्रेक्षा करें।

१३. **ज्ञानकेन्द्र**– चित्त को ज्ञानकेन्द्र-सिर के ऊपरी भाग, चोटी के स्थान पर केन्द्रित करें। दीये का प्रकाश की भांति पूरे भाग में चित्त को भीतर गहराई तक ले जाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

- अब एक साथ सभी चैतन्यकेन्द्रों की प्रेक्षा करें। जो खड़े-खड़े कर सकते हैं, वे खड़े-खड़े करें।
- चित्त को शक्तिकेन्द्र पर ले जाएं फिर क्रमशः स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र, ब्रह्मकेन्द्र, प्राणकेन्द्र, अप्रमादकेन्द्र, चाक्षुषकेन्द्र, दर्शनकेन्द्र, ज्योतिकेन्द्र, शान्तिकेन्द्र, ज्ञानकेन्द्र, शान्तिकेन्द्र, ज्योतिकेन्द्र, दर्शनकेन्द्र, चाक्षुषकेन्द्र, अप्रमादकेन्द्र, प्राणकेन्द्र, बह्मकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, स्वास्थ्यकेन्द्र, शक्तिकेन्द्र प्रत्येक चैतन्यकेन्द्र की यात्रा करें।
- वृत्ताकार में सभी चैतन्यकेन्द्रों पर चित्त की यात्रा चलें।

  तेजी के साथ चित्त को सभी चैतन्यकेन्द्रों पर घुमाएं। वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव करें।

ध्यान का तीसरा चरण

लेश्याध्यान

आनन्दकेन्द्र पर हरे रंग का ध्यान

- चित्त को आनन्दकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर पन्ने की भांति चमकते हुए हरे रंग का ध्यान करें।
- अनुभव करें–शरीर के चारों ओर चमकते हुए हरे रंग के परमाणु फैले हुए हैं, हरे रंग का प्रकाश फैला हुआ है। हरे रंग का श्वास लें। अनुभव करें-प्रत्येक श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।
- अनुभव करें–आनन्दकेन्द्र से हरे रंग के परमाणु निकलकर शरीर के

चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल हरे रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें।

- अनुभव करें—भावधारा निर्मल हो रही है। भावधारा निर्मल हो रही है। भावधारा निर्मल हो रही है।

विशुद्धिकेन्द्र पर नीले रंग का ध्यान

- चित्त को विशुद्धिकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर मयूर के कंठ की भांति चमकते हुए नीले रंग का ध्यान करें।
- अनुभव करें—शरीर के चारों ओर चमकते हुए नीले रंग के परमाणु फैले हुए हैं, नीले रंग का प्रकाश फैला हुआ है। नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें—प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।
- अनुभव करें—विशुद्धिकेन्द्र से नीले रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल नीले के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें।
- अनुभव करें—वासनाएं शान्त हो रही हैं। वासनाएं शान्त हो रही हैं। वासनाएं शान्त हो रही हैं।

दर्शनकेन्द्र पर अरुण रंग का ध्यान

- चित्त को दर्शनकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर बाल सूर्य (उगता हुआ सूर्य) की भांति चमकते हुए अरुण रंग का ध्यान करें।
- अनुभव करें—शरीर के चारों ओर चमकते हुए अरुण रंग के परमाणु फैले हुए हैं, अरुण रंग का प्रकाश फैला हुआ है। अरुण रंग का श्वास लें। अनुभव करें—प्रत्येक श्वास के साथ अरुण रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।
- अनुभव करें—दर्शनकेन्द्र से अरुण रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल अरुण रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें।

- अनुभव करें—अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही है। अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही है। अन्तर्दृष्टि जागृत हो रही है।

ज्ञानकेन्द्र पर पीले रंग का ध्यान

- चित्त को ज्ञानकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर सूर्यमुखी के फूल की भांति चमकते हुए पीले रंग का ध्यान करें।
- अनुभव करें—शरीर के चारों ओर चमकते हुए पीले रंग के परमाणु फैले हुए हैं, पीले रंग का प्रकाश फैला हुआ है। पीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें—प्रत्येक श्वास के साथ पीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।
- अनुभव करें—ज्ञानकेन्द्र से पीले रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल पीले रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें।
- अनुभव करें—ज्ञान-तंतु जागृत हो रहे हैं। ज्ञान-तंतु जागृत हो रहे हैं। ज्ञान-तंतु जागृत हो रहे हैं।

ज्योतिकेन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान

- चित्त को ज्योतिकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां पर पूर्णिमा के चांद की भांति चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करें।
- अनुभव करें—शरीर के चारों ओर चमकते हुए श्वेत रंग के परमाणु फैले हुए हैं, श्वेत रंग का प्रकाश फैला हुआ है। श्वेत रंग का श्वास लें। अनुभव करें—प्रत्येक श्वास के साथ श्वेत रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं।
- अनुभव करें—ज्योतिकेन्द्र से श्वेत रंग के परमाणु निकलकर शरीर के चारों ओर फैल रहे हैं। पूरा आभामण्डल श्वेत रंग के परमाणुओं से भर रहा है। उन्हें देखें, अनुभव करें।
- अनुभव करें—क्रोध शांत हो रहा है। क्रोध शांत हो रहा है। क्रोध शांत हो रहा है।

मंत्र प्रेक्षा

(नमस्कार महामंत्र)

१. ● चित्त को ज्ञानकेन्द्र पर ले जाएं। वहां चमकते हुए श्वेत रंग का साक्षात्कार करते हुए उच्चारण करें– णमो अरहंताणं (३ मिनिट)

● मानसिक जप करें। ज्ञानकेन्द्र पर चमकते हुए श्वेत रंग का साक्षात्कार करें। (३ मिनिट)

२. ● चित्त को दर्शनकेन्द्र पर ले जाएं। वहां चमकते हुए अरुण रंग का साक्षात्कार करते हुए उच्चारण करें–णमो सिद्धाणं (३ मिनिट)

● मानसिक जप करें। दर्शनकेन्द्र पर चमकते हुए अरुण रंग का साक्षात्कार करें। (३ मिनिट)

३. ● चित्त को विशुद्धि केन्द्र पर ले जाएं। वहां चमकते हुए पीले रंग का साक्षात्कार करते हुए उच्चारण करें–णमो आयरियाणं (३ मिनिट)

● मानसिक जप करें। विशुद्धि केन्द्र पर चमकते हुए पीले रंग का साक्षात्कार करें। (३ मिनिट)

४. ● चित्त को आनन्द केन्द्र पर ले जाएं। वहां चमकते हुए हरे रंग का साक्षात्कार करते हुए उच्चारण करें– णमो उवज्झायाणं (३ मिनिट)

● मानसिक जप करें। आनन्द केन्द्र पर चमकते हुए हरे रंग का साक्षात्कार करें। (३ मिनिट)

५. ● चित्त को शक्ति केन्द्र पर ले जाएं। वहां चमकते हुए नीले रंग का साक्षात्कार करते हुए उच्चारण करें–णमो लोए सव्व साहूणं (३ मिनिट)

● मानसिक जप करें। शक्ति केन्द्र पर चमकते हुए नीले रंग का साक्षात्कार करें। (३ मिनिट)

(प्रारम्भ में ध्यान की पूर्व तैयारी, लघु कायोत्सर्ग कराएं। अन्त में ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा व समापन विधि कराएं)

(अर्हम् मंत्र)

- चित्त को आनन्दकेन्द्र पर ले जाएं। वहां चमकते हुए सुनहरे रंग का साक्षात्कार करते हुए उच्चारण करें—**अर्हम्** (१५ मिनिट)
- मानसिक जप करें। आनन्दकेन्द्र पर चमकते हुए सुनहरे रंग का साक्षात्कार करें। (१५ मिनिट)

(प्रारम्भ में ध्यान की पूर्व तैयारी, लघु कायोत्सर्ग कराएं। अन्त में ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा व समापन विधि कराएं)

ध्यान का चौथा चरण

ज्योतिकेन्द्र-प्रेक्षा

- चित्त को ज्योतिकेन्द्र-ललाट के मध्य भाग पर केन्द्रित करें। वहां पूर्णिमा के चांद की तरह चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करें।
- चित्त को पूरे ललाट पर फैलाएं, वहां श्वेत रंग का ध्यान करें।
- अनुभव करें-पूरे ललाट के भीतर श्वेत रंग के परमाणु प्रवेश कर रहे हैं।
- पूरा ललाट श्वेत रंग के परमाणुओं से भर गया है।

शान्ति व आनन्द का अनुभव करें। (५ मिनिट)

दो, तीन लम्बा श्वास लें।

समापन विधि

विवेक सूत्र :

१. अप्पणा सच्चमेसेज्जा मेत्तिं भूएसु कप्पए। (३ बार)

स्वयं सत्य खोजें, सबके साथ मैत्री करें। (१ बार)

२. आहंसु विज्जा चरणं पमोक्खं। (३ बार)

दुःख-मुक्ति के लिए विद्या और आचार का अनुशीलन करें।

(१ बार)

शरणसूत्र :

अरहंते सरणं पवज्जामि,

सिद्धे सरणं पवज्जामि,

साहू सरणं पवज्जामि,

केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि। (३ बार)

मैं अर्हतों की शरण स्वीकार करता हूं।

मैं सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूं।

मैं साधुओं की शरण स्वीकार करता हूं।

मैं केवलीप्रज्ञप्त धर्म की शरण स्वीकार करता हूं। (१ बार)

श्रद्धासूत्र :–

वंदे सच्चं। (३ बार)

विधि–वन्दनासन की मुद्रा में पूरा श्वास भरें, श्वास छोड़ते समय 'वन्दे' का उच्चारण करें। मेरुदण्ड और गर्दन सीधी रहे। 'सच्चं' का उच्चारण करते समय नीचे जमीन तक झुकें, फिर श्वास भरते हुए उठें।

अनुप्रेक्षाएं

सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

- आसन एवं मुद्रा का चुनाव।
- अर्हं की ध्वनि। (९ बार)
- कायोत्सर्ग।
- अनुभव करें—अपने चारों ओर मयूर की गर्दन की भांति नीले रंग के परमाणु फैले हुए हैं। चमकते हुए नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें- प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (३ मिनिट)

  चित्त को विशुद्धिकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां नीले रंग का ध्यान करें। (३ मिनिट)

- ज्योतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें—

  'सहिष्णुता का भाव पुष्ट हो रहा है।

  मानसिक संतुलन बढ़ रहा है।'

  इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर इसका नौ बार मानसिक उच्चारण करें। (५ मिनिट)

अनुचिंतन करें—

- ऋतुजनित संवेदन मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है।
- रोगजनित संवेदन मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है।

- सुख-दुःख मुझे प्रभावित करते हैं, किंतु इनके प्रभाव को कम करना है।
- अनुकूलता-प्रतिकूलता मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है।
- विरोधी विचार मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है।
- विरोधी स्वभाव मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है।
- विरोधी रुचि मुझे प्रभावित करती है, किन्तु इसके प्रभाव को कम करना है।
- ये संवेदन मुझे प्रभावित करते हैं, किन्तु इनके प्रभाव को कम करना है। यदि इनका प्रभाव बढ़ा तो मेरी शक्तियां क्षीण होंगी। जितना इनसे कम प्रभावित होऊंगा, उतनी ही मेरी शक्तियां बढ़ेंगी।
- इसलिए सहिष्णुता का विकास मेरे जीवन की सफलता का महामंत्र है। (१० मिनिट)
- दो-तीन लम्बा श्वास लें।
- शरण सूत्र का उच्चारण करें। (३ बार)

मृदुता की अनुप्रेक्षा

- आसन एवं मुद्रा का चुनाव।
- अर्हं की ध्वनि। (९ बार)
- कायोत्सर्ग।

  अनुभव करें—अपने चारों ओर पन्ने की भांति हरे रंग के परमाणु फैले हुए हैं। चमकते हुए हरे रंग का श्वास लें। अनुभव करें—प्रत्येक श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (३ मिनिट)
- चित्त को दर्शनकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां हरे रंग का ध्यान करें। (३ मिनिट)
- शांतिकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें—

'मृदुता का भाव पुष्ट हो रहा है।

अहं का भाव क्षीण हो रहा है।'

- इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर नौ बार मनासिक उच्चारण करें। (५ मिनिट)

अनुचिन्तन करें–

- व्यक्ति और वस्तु के प्रति मेरा व्यवहार विनम्र होना चाहिए।
- सत्य के प्रति विनम्र भाव-जो मैं कहता हूं वही सत्य है, इस आग्रह से बचने का मनोभाव।
- मुझे अपने अहं का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।
- कृतज्ञता के लिए साधुवाद, धन्यवाद देना, सत्य प्रकृति का अनुमोदन करना जीवन की सफलता का एक आवश्यक तत्त्व है।
- अपनी भूल के लिए खेद प्रकट करना, अप्रिय व्यवहार हो जाने पर क्षमायाचना करना, अपने आपको बड़ा बनाने का उपाय है। इन सबके प्रति मैं जागरूक बना रहूंगा। (१० मिनिट)
- दो-तीन लम्बा श्वास लें।
- शरण सूत्र का उच्चारण करें। (३ बार)

अभय की अनुप्रेक्षा

- आसन एवं मुद्रा का चुनाव।
- अर्हं की ध्वनि। (९ बार)
- कायोत्सर्ग।
- अनुभव करें–अपने चारों ओर गुलाबी रंग के परमाणु फैले हुए हैं। चमकते हुए गुलाबी रंग का श्वास लें। अनुभव करें–प्रत्येक श्वास के साथ गुलाबी रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (३ मिनिट)
- चित्त को आनन्दकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां गुलाबी रंग का ध्यान करें। (३ मिनिट)

- आनन्दकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–

  'अभय का भाव पुष्ट हो रहा है।

  भय का भाव क्षीण हो रहा है।'

- इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर नौ बार मनासिक उच्चारण करें। (५ मिनिट)

अनुचिन्तन करें–

- विकसित शक्तियां भय से कुंठित हो जाती हैं।
- नई शक्तियां विकसित नहीं हो पातीं, इसलिए मुझे अभय होने का अभ्यास करना चाहिए।
- जो डरता है उसे दूसरे डराते हैं।
- भय आदमी को कमजोर बनाता है।
- शक्ति के विकास के लिए अभय की साधना करूं, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।
- मैं निश्चय ही भय से छुटकार पा लूंगा। (१० मिनिट)
- दो-तीन लम्बा श्वास लें।
- शरण सूत्र का उच्चारण करें। (३ बार)

सामंजस्य की अनुप्रेक्षा

- आसन एवं मुद्रा का चुनाव।
- अर्हं की ध्वनि। (९ बार)
- कायोत्सर्ग।
- अनुभव करें–अपने चारों ओर मयूर की गर्दन की भांति नीले रंग के परमाणु फैले हुए हैं। चमकते हुए नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें– प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। (३ मिनिट)
- चित्त को शक्तिकेन्द्र पर केन्द्रित करें। वहां नीले रंग का ध्यान करें। (३ मिनिट)

- आनन्दकेन्द्र पर ध्यान केन्द्रित कर अनुप्रेक्षा करें–
- **मैं शांतिपूर्ण-सहअस्तित्व का अभ्यास करूंगा।**
- **मैं किसी भी उत्तेजना या तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।**
- इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर नौ बार मनासिक उच्चारण करें। (५ मिनिट)

अनुचिन्तन करें–

- मैं आग्रह के स्थान पर अनाग्रह का प्रयोग करूंगा।
- मैं दूसरों के विचारों का सम्मान करूंगा। उन्हें समझने का प्रयत्न करूंगा।
- मैं दूसरों की रुचि का आदर करूंगा।
- मैं अपने स्वार्थ को प्रधानता नहीं दूंगा, सबके हित की बात सोचूंगा।
- मैं विरोध की स्थिति में भी मैत्री का प्रयोग करूंगा (१० मिनिट)
- दो-तीन लम्बा श्वास लें।
- शरण सूत्र का उच्चारण करें। (३ बार)

अनित्य अनुप्रेक्षा

- आसन एवं मुद्रा का चुनाव।
- अर्हं की ध्वनि। (९ बार)
- कायोत्सर्ग।
- जिस स्थान पर बैठे हैं, यह मात्र संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। स्थान के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। स्थान से अपने विसंबंध (भिन्नता) का अनुभव करें।
- जिस आसन पर बैठे हैं, यह मात्र संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। आसन के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। आसन से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

- शरीर पर जो वस्त्र पहने हुए हैं, यह मात्र संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। वस्त्र के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। वस्त्र से अपने विसंबंध का अनुभव करें।
- यह शरीर मात्र एक संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। शरीर के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। शरीर से अपने विसंबंध का अनुभव करें।
- शरीर में होने वाले रोग मात्र एक संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। रोग के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। रोग से अपने विसंबंध का अनुभव करें।
- मन की उलझनें, मानसिक समस्याएं मात्र एक संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। मानसिक समस्याओं के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। मानसिक समस्याओं से अपने विसंबंध का अनुभव करें।
- उपाधियां—क्रोध, अहंकार आदि जितनी भी उपाधियां हैं, मात्र एक संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। उपाधियों के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। उपाधियों से अपने विसंबंध का अनुभव करें।
- स्वभाव, आदतें (लड़ने की आदत, नशे की आदत, अलग-अलग प्रकार की आदतें) मात्र एक संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। स्वभाव, आदतों के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। स्वभाव, आदतों से अपने विसंबंध का अनुभव करें।
- यह सूक्ष्म शरीर जहां से उपाधियां आती हैं, मात्र एक संयोग है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। सूक्ष्म शरीर

के साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। उपाधियों से अपने विसंबंध का अनुभव करें।

- मेरा चैतन्य स्थान, आसन, वस्त्र, शरीर, रोग, मानसिक समस्याएं, आदतें, सूक्ष्म शरीर-इन सबसे भिन्न हैं। इन सबके साथ मेरा संयोग जुड़ा हुआ है। जिसका संयोग होता है, उसका निश्चित वियोग होता है। इनके साथ संयोग का अनुचिन्तन करें। अनुचिन्तन करते-करते अनुभव के स्तर पर आएं। चेतना से इन सबके विसंबंध का अनुभव करें।

इमं सरीरं अणिच्चं। इमं सरीरं अणिच्चं। इमं सरीरं अणिच्चं।

- यह शरीर अनित्य है। यह शरीर अनित्य है। यह शरीर अनित्य है। प्रतिक्षण अनेक कोशिकाएं नष्ट हो रही हैं, नई बन रही हैं।
- यह विसंबंध का प्रयोग है। सारे संबंधों को देखते चले जाएं। ये जुड़े हुए हैं, इनको देखते चले जाएं, पर संयोग मूर्च्छा न बन जाए। बाद में जो कुछ बचेगा, वह मैं हूं। चिन्तन करें। अनुचिन्तन करें। गहराई से चिन्तन करें।
- दो-तीन लम्बे श्वास लें।
- शरण सूत्र का उच्चारण करें। (३ बार)

सम्पूर्ण कायोत्सर्ग

- कायोत्सर्ग के लिए तैयार हो जाएं। लेटने जितने स्थान की व्यवस्था कर, खड़े हो जाएं। कायोत्सर्ग के लिए संकल्प करें।

संकल्प–

'तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउसग्गं।

'मैं शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्त होने के लिए कायोत्सर्ग का प्रयोग कर रहा हूं।'

(कायोत्सर्ग की अवधि निश्चित करें।) मैं.....मिनिट के बाद कायोत्सर्ग से लौट आऊंगा।

सीधे खड़े हों। दोनों हाथ साथल से सटे रहें। एड़ियां मिली हुई, पंजे खुले रहे। श्वास भरते हुए हाथों को ऊपर की ओर ले जाएं। पंजों पर खड़े होकर पूरे शरीर को तनाव दें। श्वास छोड़ते हुए हाथों को साथल के पास ले आएं और शिथिलता का अनुभव करें। इस प्रकार तीन आवृत्तियों द्वारा क्रमशः तनाव और शिथिलता का अनुभव करें। (दो मिनिट)

पहला चरण–

पीठ के बल लेटें। दोनों पैरों के बीच में एक फुट का फासला रहे। हाथों को शरीर के समानान्तर आधा फुट की दूरी पर फैलाएं। हथेलियां आकाश की तरफ खुली रखें। आंखें कोमलता से बंद। प्रतिमा की भांति अडोल रहें। पूरे कायोत्सर्ग काल तक स्थिरता और जागरूकता बनी रहे।

- प्रत्येक अवयव में शीशे की भांति भारीपन का अनुभव करें। (१ मिनिट)
- प्रत्येक अवयव में रूई की भांति हल्केपन का अनुभव करें। (२ मिनिट)

दूसरा चरण–

श्वास मंद और शांत। चित्त को दाएं पैर के अंगूठे पर केन्द्रित करें। शिथिलता का सुझाव दें–अंगूठे का पूरा भाग शिथिल हो जाए.....अंगूठा शिथिल हो रहा है। अनुभव करें, अंगूठा शिथिल हो गया है। इसी प्रकार अंगुलियां... पंजा... तलवा... एडी... टखना... पिण्डली... घुटना... जंघा... तथा कटिभाग को क्रमशः शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। (७ मिनिट)

इसी प्रकार बाएं पैर का अंगूठा... अंगुलियां... पंजा... तलवा... एडी... टखना... पिण्डली... घुटना... जंघा... तथा कटिभाग को क्रमशः शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। (७ मिनिट)

पेडू का पूरा भाग... पेट के भीतरी अवयव–दायां गुर्दा, बायां गुर्दा... बड़ी आंत... छोटी आंत... अग्न्याशय... पक्काशय... आमाशय... तिल्ली... यकृत... तनुपट...।

छाती का पूरा भाग–हृदय... दायां फेफड़ा... बायां फेफड़ा... पसलियां... पीठ का पूरा भाग–मेरूदण्ड... सुषुम्णा... गर्दन...। दाएं हाथ का अंगूठा... अंगूलियां... हथेली... मणिबंध से कोहनी... और कोहनी से कंधा...। इसी प्रकार बाएं हाथ का अगूठा... अंगुलिया... हथेली मणिबंध से कोहनी... और कोहनी से कंधा...।

कंठ... स्वरयंत्र... ठुड्डी... होठ... मसूड़े... दांत... जीभ... तालु... दायां कपोल... बायां कपोल... नाक... दाईं कनपटी... दायां कान... बाईं कनपटी... बायां कान... दाईं आंख... बाईं आंख... ललाट और सिर... प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करें, शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। (५ मिनिट)

शरीर के चारों ओर श्वेत रंग के प्राण के प्रवाह का अनुभव करें। आभामंडल की निर्मलता का अनुभव करें। कण-कण में शांति का अनुभव करें। (१० मिनिट)

तीसरा चरण–

अब भेदविज्ञान का अभ्यास करें। शरीर से आत्मा की पृथकता का अनुभव करें।

- शरीर अचेतन है, आत्मा चेतन है।
- मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं।
- शरीर दृश्य है, मैं द्रष्टा हूं।
- अपने ज्ञाता द्रष्टा स्वरूप का अनुभव करें। (५ मिनिट)

चौथा चरण–

पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक चित्त और प्राण की यात्रा करें।

अनुभव करें, पैर से सिर तक चैतन्य पूरी तरह जागृत हो गया है। प्रत्येक अवयव में प्राण का अनुभव करें।

- तीन दीर्घश्वास के साथ प्रत्येक अवयव में सक्रियता का अनुभव करें।

(३ मिनिट)

- धीरे-धीरे बैठने की मुद्रा में आएं।

शरण सूत्र का उच्चारण करें।

अरहंते सरणं पवज्जामि,

सिद्धे सरणं पवज्जामि,

साहू सरणं पवज्जामि,

केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि। (३ बार)

वन्दना की मुद्रा में आएं। 'वंदे सच्चं' का उच्चारण करें।

(कोई व्यक्ति अगर कायोत्सर्ग सम्पन्न होने पर भी न लौटे तो उसका स्पर्श न करे, जगाएं भी नहीं। प्रशिक्षक स्वयं निरीक्षण करे।)

परिशिष्ट-१

मंगल भावना

चेतना के आध्यात्मिक विकास के लिए निम्न निर्दिष्ट ९ सूत्रों का विकास महत्त्वपूर्ण हैं।

१. **श्री-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं आभा और संपदा से संपन्न बनूं।
२. **ह्री-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं लज्जा-आत्मानुशासन से संपन्न बनूं।
३. **धी-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं बुद्धि से संपन्न बनूं।
४. **धृति-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं धैर्य से संपन्न बनूं।
५. **शक्ति-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं शक्ति से संपन्न बनूं।
६. **शान्ति-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं शान्ति से संपन्न बनूं।
७. **नन्दि-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं आनन्द से संपन्न बनूं।
८. **तेजः-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं तेज से संपन्न बनूं।
९. **शुक्ल-सम्पन्नोऽहं स्याम्** मैं शुक्ल लेश्या से संपन्न बनूं।

आनन्द भावना

आनन्दो मे वर्षति वर्षति।

नो मे दुःखं, नो मे दुःखम्।

मेरे अन्तःकरण में आनन्द बरस रहा है, बरस रहा है।

मुझे कोई दुःख नहीं है, कोई दुःख नहीं है।

शांतं चित्तं लब्धं लब्धम्।

नो मे तापः, नो मे तापः।

चित्त शांत हो गया हैं, शांत हो गया है।

अब कोई ताप नहीं हैं, कोई ताप नहीं है।

शक्ति-स्रोतः प्रादुर्भूतम्।

नो मे दैन्यं, नो मे दैन्यम्।

शक्ति का स्रोत प्रस्फुटित हो गया है।

दीनता मिट गई है, दीनता मिट गई है।

अंतश्चक्षुः लब्धं लब्धम्।

नो मे रात्रिः नो मे रात्रिः।

अन्तश्चक्षु खुल गया है, खुल गया है।

अब मेरे सामने रात या अंधकार नहीं है।

नो मे दुःखं, नो मे तापः।

नो मे दैन्यं, नो मे रात्रिः।

मुझे न दुःख है, न ताप है।

अब न दीनता है, न रात है।

शांतः क्रोधः, शांतं मानम्।

शांता माया, शान्तो लोभः।

क्रोध भी शान्त है, मान भी शान्त है।

माया भी शान्त है, लोभ भी शान्त है।

उदिता शांतिः, उदिता मृदुता।

उदिता ऋजुता, उदिता तुष्टिः।

शान्ति उदित हो गई है, मृदुता आ गई है।

ऋजुता उदित हो गई है, सन्तोष का उदय हो गया है।

शांतं पापं, शांतं पापम्।

उदितो धर्मः, उदितो धर्मः।

पाप शान्त हो गया है, पाप शान्त हो गया है।

धर्म का उदय हो गया है, धर्म का उदय हो गया है।

नो मे दुःखं। नो मे तापः।

नो मे दैन्यं, नो मे रात्रिः।

मुझे न दुःख है, न ताप है।

अब न दीनता है, न रात है।

मुदितं चित्तम्। मुदितं चित्तम्।

मुदितं चित्तम्। मुदितं चित्तम्।

चित्त प्रमुदित है, चित्त प्रमुदित है।

चित्त प्रमुदित है, चित्त प्रमुदित है।

प्रेक्षा-संगान

प्रेक्षा श्रद्धां यायात्

प्रेक्षा श्रद्धा की कोटि में पहुंचे।

श्रद्धा वीर्यं यायात्

श्रद्धा पराक्रम की कोटि में पहुंचें।

वीर्यं चरणं यायात्

पराक्रम आचरण की कोटि में पहुंचे।

अन्तर्भावे मे, चिन्तायां मे

मेरे अन्तःकरण में, मेरे चिन्तन में,

आचरणे मे, व्यवहारे मे

मेरे आचरण में, मेरे व्यवहार में,

समता भूयात्, समता भूयात्

समता हो, समता हो।

नवसूर्यो मे उदयं यायात्

मेरे जीवन में नया सूरज उगे।

उदयं यायात्

नए प्रभात का उदय हो।

तेजोलेश्या उदयं यायात्

मेरे जीवन में तेजोलेश्या प्रकट हो।

उदयं यायात्

अध्यात्म की किरण फूटे।

प्रेक्षा गीत

आत्म-साक्षात्कार प्रेक्षाध्यान के द्वारा।
स्वप्न हो साकार इस अभियान के द्वारा।।

१. आत्मना आत्मावलोकन है यही दर्शन,
अन्तरात्मा में सहज हो सत्य का स्पर्शन।
क्षीण हो संस्कार अन्तर्धान के द्वारा।।

२. मानसिक संतुलन, जागृति और चित्त-समाधि,
निकट आती, दूर जाती व्याधि, आधि, उपाधि।
प्रेम का विस्तार, निज संधान के द्वारा।।

३. बदल जाते हैं रसायन, ग्रंथियों के स्राव,
बदलते व्यवहार, सारे बदलते हैं भाव।
बदलता संसार, आनापान के द्वारा।।

४. समस्या आवेग की है, विकटतम जग में,
आदतों की विवशता है, व्याप्त रग-रग में।
हो रहा उपचार इस अवदान के द्वारा।।

५. अनुप्रेक्षा और लेश्याध्यान, कायोत्सर्ग,
श्वास-प्रेक्षा से धरा पर उतर आए स्वर्ग,
हृदय हो अविकार केवल ज्ञान के द्वारा।
हृदय हो अविकार 'तुलसी' ध्यान के द्वारा।।

भोजनकालीन भावना

भावना हो पावना सद्भावना से हम जिएं,
साधना की अमल सरिता पा, अमृत-रस हम पिएं।
देह-यात्रा को चलाने के लिए आहार हो,
और सहजानंद पा, उसमें सघन संचार हो।
हे प्रभो! आहार, प्रतिपल योग नित बनता रहे,
सतत जागृति और समता का सपन फलता रहे।
वेदना संवेदना से मुक्त भावक्रिया करें,
संविभागी धारणा से, स्वाद-मूच्छा को हरें।

अणुव्रत आचारसंहिता

१. मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।

- आत्म-हत्या नहीं करूंगा।
- भ्रूण-हत्या नहीं करूंगा।

२. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।

- आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
- विश्व-शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।

३. मैं हिंसा एवं तोड़-फोड़मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।

४. मैं मानवीय एकता में विश्वास रखूंगा।

- जाति, वर्ण आदि के आधार पर किसी को ऊंच-नीच नहीं मानूंगा।
- अस्पृश्य नहीं मानूंगा।

५. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।

- साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।

६. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।

- अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।
- छलपूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।

७. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।

८. मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।

९. मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

१०. मैं व्यसनमुक्त जीवन जीऊंगा।

- मादक तथा नशीले पदार्थों—शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तंबाकू आदि का सेवन नहीं करूंगा।

११. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।

- हरे-भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।
- पानी, बिजली आदि का अपव्यय नहीं करूंगा।